प्राक्कथन

अनादिकाल से स्याद्वाद जैसे गम्भीर विषय को पूर्णतया समझ कर तदनुसार अपने जीवन को ढाल त्याग में ओत प्रोत हो जैन मुनि और साध्वियां तपस्विजीवनव्यतीत करते हुए नरजन्म सफल करते आ रहे हैं।

धार्मिक ग्रन्थ संस्कृत एवं प्राकृत भाषा में होने के कारण जन साधारण उन्हें समझने में कठिनता से सक्षम हो पाते हैं।

जैन दर्शन के यम, नियम, आचार और विचारादि भाषा में सरलता से समझने की आवश्यकता दीर्घकाल से अनुभव की जारही थी।

पूज्य चरण भगवान् महावीर के दो हजार पानसोवें निर्वाण महोत्सव पर वह आवश्यकता आदरणीय आचार्य कल्प श्री १०८ पूज्य मुनिराज ज्ञानभूषणजी महाराज द्वारा "सोलह कारण भावना" नामक पुस्तक लिखी जाकर पूर्ण की गई है।

आशा है जैन दर्शन के जिज्ञासु विद्वज्जन इस छोटेसे किन्तु सारगर्भित हिन्दी में लिखे ग्रन्थ से जैन सिद्धान्तों द्वारा मोक्षप्राप्ति जैसे कठिन कार्य को सुगमता से प्राप्त कर भव सागर से पार हो नरजन्म सफल कर सकेंगे।

संसार के सुखप्रद लक्ष्मी और विषयों के उपभोग सब क्षणिक और सहसा मीठे मालूम होते हैं, किन्तु उन सभी के फल कड़वे हैं। इसलिये उन अवाञ्छनीय फलों से बचने के ही लिये धर्म का आश्रय लेना आवश्यक है। इसी भाव के किसी प्राचीन कवि के पद्यको राजस्थान के भीलवाड़े जिले के बिजोलिया गाम के एक जैन मन्दिर में शिलालेख पर उत्कीर्ण कर धार्मिक जनता से धर्मका आश्रय लेने की अपेक्षा की गई है। पद्य में सांसारिक विषयों

की तुच्छता और निस्सारता प्रतिपादित की है। यह शिलालेख न केवल इतिहास पर प्रकाश डालता है, अपितु धार्मिक उपदेशप्रद पद्यका चुनाव करने वाले की वीतरागिता और जीव को सांसारिक विषयों में न उलझ मोक्षपथ का पथिक बनने की प्रेरणा देता है।

पद्य निम्नलिखित है, जो प्रशंसनीय है।

देखिये:—

वाताभ्रविभ्रममिदं वसुधाधिपत्यः -
मापातपातमधुराः विषयोपभोगाः।
प्राणास्तृणाग्रजलबिन्दुसमानराणाम,
धर्मः सखा परमहो परलोकयाने ।

कवि ने प्राणों को क्षण भंगुर बताते हुए न केवल अन्य सांसारिक सुखों की अवहेलना की है, अपितु सम्पूर्ण पृथ्वी के राज्य तक को भी निस्सर बता परलोक मार्ग में धम को ही पूर्ण मित्र दिखाया है।

इसी प्रकार की प्रेरणा से प्रेरित होकर पूज्य गुरुवर ने इस पुस्तक में वीतरागता, सम्यक्ज्ञान, सम्यक दर्शन शील की आवश्यकता, गुरुभक्ति एव अन्य सभी धर्म के सहायक विषयों का समावेश कर सप्त व्यसनादि से बच जीवन को उन्नत बनाने की जनता को प्रेरणा दी है। आशा है सज्जन इसमे लाभ उठाकर पूज्य वीतराग आचार्य कल्प मुनि श्री ज्ञानभूषणजी महारज के प्रयत्न को सफल करेंगे।

भवदीयः—

बालकृष्ण व्यास, शास्त्री

अध्यक्ष

शिवशक्ति पीठ पुस्तकालय

राजमहल, उदयपुर (राज०)
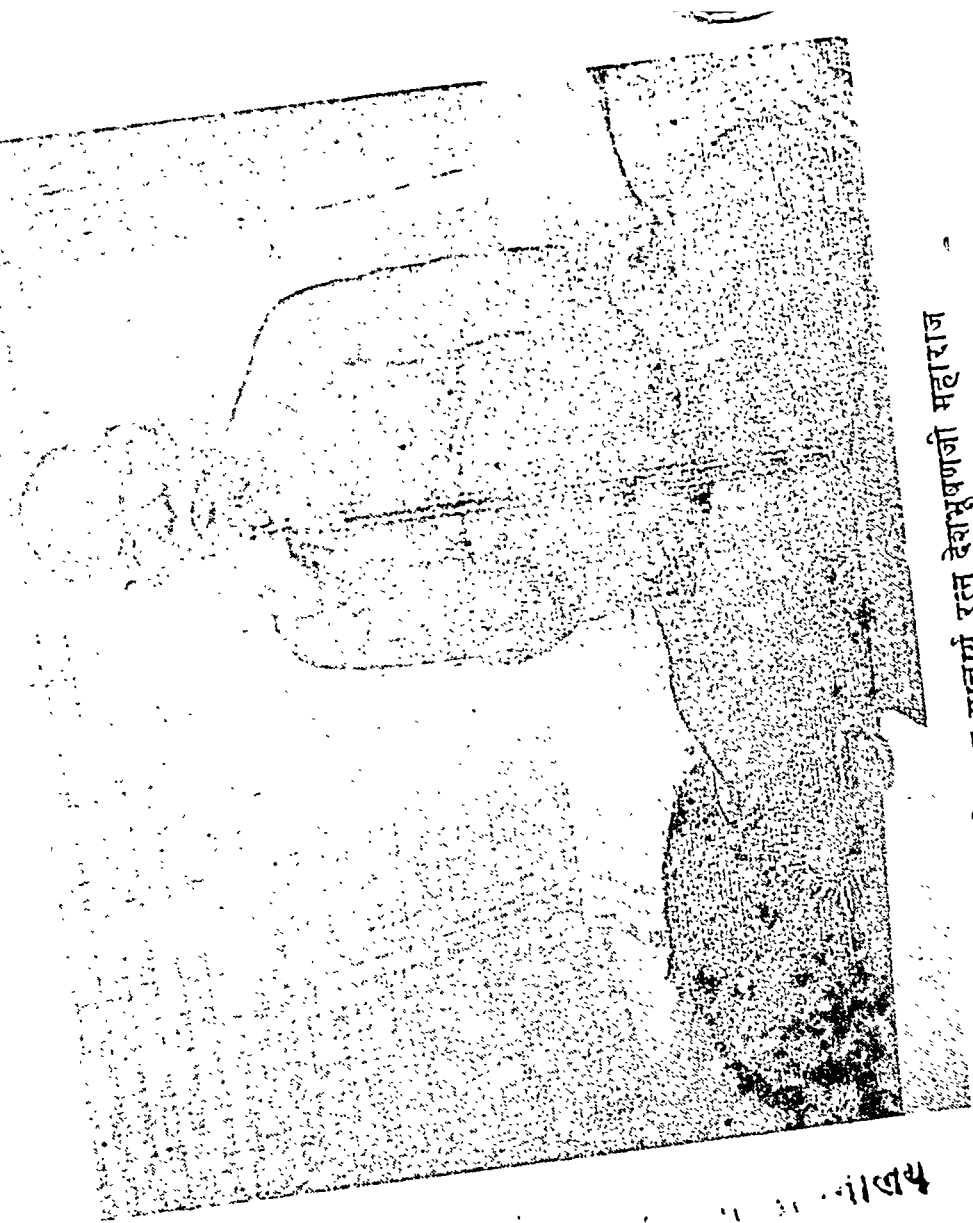
श्री १०८ आचार्य रत्न देशभूषणजी महाराज

आचार्य कल्प श्री १०८ ज्ञानभूषणजी महाराज का संक्षिप्त जीवन परिचय

परम पूज्य, विद्यालंकार बालब्रह्मचारी, वाणी भूषण, आचार्य रत्न देशभूषणजी महाराज के परम शिष्य दया निधान परम तपोनिधि आचार्य कल्प श्री १०८ ज्ञानभूषणजी का जन्म मध्य प्रदेश ग्वालियर स्टेट, जिला मोरेना, परगना अम्बाह, ग्राम ऐसहा में शुभ नक्षत्र में हुआ था। यह सुन्दर ग्राम चम्बल नदी के किनारे पर बसा है। यहां पर दि० जैन जंसवालों के सात घर थे। जो जैन धर्म परायण, सदाचारी, न्याय नीति व संयम पूर्वक जीवन यापन करते थे। वहीं पर सेठ प्रेमराजजी तथा विजयसिंहजी दो भाई रहते थे दोनों भाइयों का विवाह एक ही घर की दो बहिनों के साथ हुआ। प्रेमराज के दो पुत्र, दो पुत्री और विजयसिंह के एक पुत्र हुआ। प्रेमराज के दो पुत्रों में से बड़े का नाम "श्रीलाल" छोटे का नाम पंचाराम' था उनकी दो बहिनें थी। बड़ी बहिन का नाम चिरोंजीबाई और छोटी का नाम चंदनियाबाई था। पंचाराम तो ब्रह्मचारी हो गये तथा घर छोड़कर चले गये।

'श्री लाल' की धर्म पत्नी का नाम 'सरस्वती' था। सरस्वती देवी के कूख से तीन पुत्र तथा एक पुत्री ने जन्म लिया। बड़े पुत्र का नाम लज्जाराम और बहिन का नाम रामदेवी और उनके पुत्र का नाम पोखेराम तथा सबसे छोटे का नाम कपूरचंद था। इन सभी में पोखेराम अद्वितीय व कुल के दीपक थे। 'पोखेराम' का जन्म अषाढ़ सुदी सप्तमी बुधवार की रात्रि में वि०स० १९८७

में हुआ था। इनकी डेढ़ वर्ष की अवस्था में प्रेमराजजी सपरिवार ऐसहा छोड़ कर नयापुरा में रहने लगे। वहां से जाने का कारण यह था कि एक दिन रात्रि में चोरी हो गयी थी जिसमें काफी सामान चोरी में चला गया था।

पोखेराम के पिता श्रीलालजी व्यापार के लिये कलकत्ता आया जाया करते थे। इनके घरमें घी का व्यापार तथा गिरवी रखने का व्यापार होता था। पोखेराम ने केवल चार वर्ष तक स्कूल में शिक्षण प्राप्त किया इसका कारण पिता की लोभ प्रवृत्ति होने से शिक्षण आगे नहीं हो सका। कुछ दिन बाद 'श्रीलाल' जी कलकत्ता जाकर रहने लगे उनके ज्येष्ठ पुत्र लज्जाराम का विवाह रूअर निवासी श्री ज्योतिप्रसाद की पुत्री के साथ सम्पन्न हुआ। कर्म योग से कुछ दिन बाद रोग होने से पुत्र वधु का स्वर्गवास होने के कारण कलकत्ता में ही पुनः उनका विवाह फूलपुर से हो गया। उसके बाद पोखेराम को कलकत्ता जाने का प्रथम अवसर मिला किन्तु अल्पकाल बीते ही पुनः नयापुरा वापिस आ गये। फिर चंद दिनों बाद कलकत्ता गये और वहां पर वह बाजार में कपड़े की दुकान पर बैठने लगे कि एक दिन रात्रि में सोते समय रात्रि के चार बजे एक भविष्य बोधक आश्चर्य जनक स्वप्न देखा। वह स्वप्न संकेत कर रहा था कि पोखेराम यह मार्ग तुमको सम्मेद शिखर का रास्ता बता रहा है। इस मार्ग को छोड़कर अन्य मार्ग से मत जाना। इनकी प्रवृति शुरु से ही वैराग्य की ओर झुकी थी।

यह पहला ही अवसर था कि एक दिन यह शुभ सूचक स्वप्न देखा। प्रातः उठते ही उस स्वप्न का ध्यान कर बिना विचारे ही और बिना किसी को कहे दुकान बंद कर सम्मेद शिखर की यात्रा करने व स्वप्न को सार्थक करने निकल पड़े। माघ शुक्ला पंचमी

ना दिन था। मीठी २ सर्दी भी थी। हावड़ा से गाड़ी में बैठकर ईसरी स्टेशन पर उतकर पैदल मार्ग (पगडंडी) से चल दिये उन्होंने स्वप्न में जो २ चिन्ह देखे थे, वे अब प्रत्यक्ष दीखने लगे जैसे २ ईसरी स्टेशन से मधुवन की ओर बढ़ते जा रहे थे कि स्वप्न की बातें स्मरण होती आ रही थी। स्वप्न में आम के वृक्ष एक खेत में देख थे वे भी उपलब्ध हो गये। पीछे एक टीले पर कुछ गायें देखी थी वे भी टीले पर चरती हुई मिल गयी आगे चले तो स्वप्न में देखा गया एक भयंकर मार्ग भी देख लिया और पोखेराम उसी दुर्गम मार्ग से मधुवन की ओर आगे बढ़े। जंगल में प्रवेश किया तो मार्ग न मिलने से वापस आना पड़ा। फिर ये मैन रोड़ से चलने लगे। आगे चलकर चौराहा देखा उसके आगे एक नाला दिखायी दिया, जंगल भयानक था। चारों चरफ सघन वृक्ष थे। नाले में पानी कलकल की ध्वनि करता हुआ वह रहा था उसको पार करते ही पुनः एक नाला मिला था कि मधुवन के मंदिर व धर्मशालायें नजर आने लगी।

चलते-२ शामहो गयी शामको तेरह पंथी की कोठी के गेट पर बैठे थे कि धर्मशाला के ज़मादार ने आकर पूछा कि तुम कहां ठहरे हो ? तब पोखेराम ने कहा कि हम कलकत्ता से आये हैं, साथ में विस्तर कपड़े आदि नहीं हैं, विना बिस्तर कपड़े व किराये के यहां कौन ठहरायेगा इसलिये दरवाजे पर बैठे हैं। यह सुनकर धर्मशाला के कार्य कर्त्ता (कर्मचारी) ने शीघ्र ही कोठी के मंत्री से सब समाचार कहा दिया। समाचार जानकर मैनेजर ने पोखेराम को गद्दी पर बुलाकर सब हकीकत पूछकर गद्दी में ही रात्रि में सोने की पूर्ण व्यवस्था करदी। रात्रि में तीन बजे बहुत से यात्री तीर्थ की वंदना को जा रहे थे उनके साथ ही पोखेराम ने भी शुद्ध वस्त्र पहन कर नहा धोकर सम्मेद शिखर क्षेत्र की वंदना की, पुनः दूसरे दिन वंदना करते हुए जब पार्श्वनाथ टोंक पर पहुँचे तो पारस प्रभु

को प्रणाम कर आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत धारण किया और कहा कि आज से मुझे सम्पूर्ण प्रकार की स्त्रियों का त्याग हैं। इस समय पोखेराम की उम्र १८ वर्ष की थी। १८ वर्ष में ब्रह्मचर्य व्रत लेना इनके त्यागमयी एवं संयमी जीवन का अथवा सादा जीवन उच्च विचार का परिचायक है। फिर सम्मेद शिखर की वन्दना कर घर लौटे तो पिता ने कहा कि बेटा पोखेराम अब तेरी शादी अमुक की पुत्री के साथ करने का हमारा विचार है। शादी के लिये किये गये पिता के इस प्रस्ताव को सुनकर पोखेराम ने उत्तर दिया कि पिताजी आपही विचार कीजिये जो लड़की अपने को काका कहती है। उसके साथ विवाह कैसा? यह सुन पिता ने अन्य जगह से सम्बन्ध करने का विचार रखा, किन्तु उन्होंने स्पष्ट कह दिया कि मैं शादी नहीं करूंगा, मैंने आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत ले लिया है।

चंद दिनों बाद ही पिता स्वर्गवासी हो गये जिससे माता ने बहुत शोक प्रकट किया। तब पोखेराम ने व्यथित माता को समझाकर धैर्य बंधाया। इसी बीच में दुकान में चोरी हो गयी तथा अन्य कारण उपस्थित होने से जीविका का साधन टूट गया और विवश होकर इन्हें नौकरी करनी पड़ी। साथ में छोटा भाई भी रहता था। अब घर के खर्च का सम्पूर्ण भार पोखेराम पर आ पडा। जिस दुकान पर ये नौकरी करते थे उनका मालिक कहने लगा कि कल से सुबह सात बजे दुकान पर आना होगा अन्यथा नौकरी से हटा दिये जाओगे। यह सुनकर (ईश्वर भक्त) पोखेराम ने कहा कि हम भगवान की पूजन किये बिना नहीं आ सकते हैं। हम तो आठ बजे से पहले नहीं आ सकते हैं। नौकरी पर आपका इच्छा हो तो रखो या मत रखियेगा। इतना कह कर दूसरे दिन नहीं जाकर अपने स्वतंत्र व्यापार करने का प्रयत्न करने लगे।

स्वतन्त्र व्यापार से उनको पहले दिन तीन रुपये का लाभ हुआ व दूसरे दिन ५ रुपया का लाभ हुआ इस प्रकार करते २ पूर्व में किये कर्ज को चुका दिया एवं कुछ रकम एकत्र करली। वैशाख मास में छोटे भाई कपूरचन्द का विवाह धोलपुर निवासी श्री लीलाधर की पुत्री के साथ हुआ भाई के विवाह के पश्चात आपको कलकत्ता लौटने पर सौभाग्य से आचार्य रत्नश्री १०८ श्री देशभूषण जी महाराज के दर्शनों का पुण्य लाभ मिला आचार्य श्री का चातुर्मास कलकत्ता में हुआ तथा पोखेराम की बहिन रामादेवी ने चौका लगाया उसमें पोखेराम और कपूरचन्द जी शामिल हुए। इस प्रकार चातुर्मास में वेलगछिया में प्रतिदिन चौका लगता रहा क्रमशः सभी त्यागियों का आहार हुआ।

जब श्री आचार्य महाराज का चातुर्मास कुशलता पूर्वक सानन्द बीत गया तो आचार्य श्री ने सम्मेद शिखर के लिये विहार किया? पोखेराम भी भक्ति वश सम्मेद शिखर की यात्रा करने संघ के साथ चल दिये पन्द्रह दिन में संघ सकुशल सम्मेद शिखर पहुँच गया। संघस्थ श्री शान्तिमति आर्यिका जी ने पोखेराम को प्रेरित किया कि तुम दूसरी प्रतिमा के बारह व्रतों को धारण करो। तब आपने उत्तर दिया कि माताजी। यह व्रत मुझ से निभ नहीं सकेगा। पुनः माताजी ने कहाकि बेटा! तुम्हारा यह व्रत सरलता पूर्वक निभ जायगा तुम्हारो बहिन भी १२ व्रतों की धारी है इसलिये बहिन के साथ सुगमता से तुम्हारा व्रत पालन हो सकेगा। माताजी के आग्रह से पोष सुदी ११ के दिन बारह व्रतों को स्वीकार किया और विधिवत पालन किया उसके बाद श्री १०८ आचार्य रत्न देश भूषण जी इनकी अगाढ़ भक्तिवश वैयावृत्य का भावना देखकर आज्ञा कि पोखेराम बेटा! तुम हमारे साथ बाहुबली की यात्रा के लिये चलो। महाराज की आज्ञा को पोखेराम ने सहर्ष स्वीकार लिया और आज्ञा शिरोधार्य कर महाराज के साथ चल दिये।

माहा महीने में संघ ने श्रवण वेलगोला की तरफ विहार किया संघ संचालक बुनिन्दा निवासी सेठ नथमल पारसमल कासली वाल और उनकी माताजी मंगेजबाई और धर्म पत्नी रत्नबाई आदि ने सपरिवार संघ के साथ विहार किया। तीन माह में ही संघ विहार करता हुआ श्रवण वेलगोला पहुंच गया।

श्रवण वेलगोला में पोखेराम ने सप्तम प्रतिमा के व्रत लिये। अब संघ में पोखेराम ब्रह्मचारी बनकर रहने लगे और आचार्य श्री का संघ चातुमास के लिये कोल्हापुर में पहूँचा कोल्हार चातुर्मास के बाद नादनी से कलकता जाकर पोखेराम टुण्डला में श्री १०८ आचार्य विमलसागर महाराज के पास तीन माह रहें और कोल्हापुर पंच कल्याणक में पुनः आचार्य देशभूषणजी के संघ में चले गये। संघ के साथ विहार कर दिल्ली आये। जयपुर में पार्श्वनाथ चूलगिरि की प्रतिष्ठा पर संघ में ही थे। तत्पश्चात संघ के साथ मथुरा पंच कल्याणक और अयोध्या में ३३ फुट ऊंची विशाल प्रतिमा का पंचकल्याणक देखने का भी अवसर मिला। वैशाख सुदी तेरस स० २०२० निर्वाण कल्याणक बुधवार के दिन आचार्य श्री देसभूषणजी द्वारा क्षुल्लक दीक्षा ली और ज्ञानभूषण शुभ नाम आपका रखा तीन वर्ष नौ माह आपने क्षुल्लक अवस्था में व्यतीत किये। श्री शान्तिमतीजी से आपने व्याकरण एवं धर्म ग्रन्थों का ज्ञान प्राप्त किया तथा पण्डित अजितप्रसादजी से सर्वार्थ सिद्धि पढी। इसके बाद संघ दक्षिण की ओर गया तथा बाहुवली भगवान के अभिषेक मे शामिल हुए तीर्थ क्षेत्रों की यात्रा करते हुए स्तवनिधि में संघ ने चातुर्मास पूर्ण किया। कोथली में पंचकल्याणक हुआ। जयसिंह पुरा में मानस्तम्भ प्रतिष्ठा के पावन अवसर पर माघ शुक्ला सप्तमी शुक्रवार सन १९६९ में आचार्य देशभूषण महाराज से मुनि दीक्षा लेकर

महाव्रती को धारण किया। इसके बाद मुनि अवस्था में चातुर्मास कोथली कुप्पन वाड़ी में किया। यात्रा करते हुए कुम्भोज पंच कल्याणक देखकर आचार्य श्री की आज्ञा से उत्तर की ओर विहार किया।

मार्ग में दही गांव अतिशय क्षेत्र के दर्शन कर गजपंथा सिद्ध क्षेत्र की यात्रा करते हुए धुलिया में चातुर्मास किया। वहां से मांगी तुगीं सिद्ध क्षेत्र के दर्शन किये तथा आचार्य महावीरकीर्तिजी के संघ के दर्शनों का लाभ मिला। पुन: धुलिया से विहार कर संघ सहित आप बड़वानी आये वहां से बांकानेर आये। वहां बहुत दिनों से सामाजिक झगड़ा चल रहा था। मन्दिर और तीनों वेदियों में पूजा करने वाले, प्रबन्ध करने वाले तथा माली आदि भी भिन्न २ थे। भण्डार लड़ाई के कारण बन्द था। लोगों में परस्पर में काफी तनाव चल रहा था। पूज्य मुनि श्री १०८ ज्ञानभूषण महाराज के प्रयत्न से ११ वर्ष से निरन्तर चला आ रहा झगड़ा शांत हो गया और समाज में विरोध समाप्त होकर एकता स्थापित हुई।

संघ वहां से रवाना होकर सिद्धवर कूट की वंदना को गया। वहां पर ओंकारेश्वर पहाड़ का निरीक्षण किया जहां कि अनेक टूटे फूटे मन्दिर पड़े हुए हैं तथा अनेक चमत्कारिक पत्थर पड़े हैं। उनकी वंदना कर वापिस इन्दौर में लोटे और वहां ससंघ चातुर्मास किया। यहां पर चातुर्मास ससंघ समाप्त कर जयपुर की ओर लोटे। जयपुर में पहुंचकर वहां श्री १०८ आचार्य रत्न देश भूषण महाराज के दर्शन किये तथा इन्दौर से सांथ में लायी गयी श्रीमति सजनबाई को तथा धुलिया से लायी गयी कुमारी शकुन्तला को क्षुल्लिका दीक्षा आचार्य श्री के कर कमलो द्वारा

दिलवाई। फिर श्री महावीरजी की यात्रा कर संघ सहित जयपुर लौटकर चातुर्मास किया। चातुर्मास में आचार्य महावीरकीर्तिजी महाराज के संघ के दस त्यागी तथा ज्ञानभूषण मुनि संघ के १२ त्यागियों ने महती धर्म प्रभावना की, तथा धूमधाम से 'राणाजी की नशिया जयपुर' में चातुर्मास समाप्त हुआ।

चातुर्मास के बाद ज्ञानभूषणजी महाराज ने सब संघ को वहीं छोड़कर सम्मेद शिखर के लिये विहार किया। आगरा होते हुए सोनागिर सिद्ध क्षेत्र के दर्शन कर आप वहां से बनारस होते हुए सम्मेद शिखर पर पहुंच गये। २२ दिन वहां रहकर पहाड़ की ६ वंदनायें सकुसलता से की। वहीं पर आचार्य श्री १०८ विमलसागरजी महाराज का व संघ के अन्य त्यागियों के दर्शनों का पुण्य लाभ भी आपको मिला। वहां से विहार मंदारगिरि, भागलपुर, चम्पापुर, नवादा, गुणावा, पावापुरी, पंचगिरि आदि तीर्थ क्षेत्रों की वंदना कर पटना, बनारस, अयोध्याजी के दर्शन कर वापिस अपने गुरु आचार्य देशभूषण के पादमूल आगये में चातुर्मास के पूर्व जयपुर में दशलक्षण धर्म तथा दिल्ली चातुर्मास में १६ कारण भावना की पुस्तकें लिखो। देहली चातुर्मास के बाद आपने हस्तिनापुर की ओर विहार किया। हस्तिनापुर पहुँचकर वहाँ ३-४ दिन रहे और क्षेत्र की वन्दनायें कर खतोलो व मुजफ्फर नगर होते हुए दडौत पधारे और कुमारी कुसुम बाई को साथ में रखने के लिये एवं पढ़ाने के लिये आश्वासन दिया वहां के पास के छोटे छोटे गांव की भूमि को पवित्र करते हुए आपने देहली आकर पहाड़ी धीरज पर आचार्य देशभूषणजी महाराज के सानिध्य में चातुर्मास किया और संघ के सभी त्यागियों को तथा कुसुम बाई को बड़ी मेहनत से और लगन से पढ़ाया चातुर्मास के पश्चात आपने २ मुनि १ ब्रह्मचारिणी एवं एक क्षुल्लक के साथ गिरनारजी

की यात्रा के लिये विहार किया, वहां से तिजारा अलवर, जयपुर केशरियाजी, चित्तौड़, उदयपुर आदि होते हुए नवा गांव में कुमारी कुसुमलता को सप्तम प्रतिमा के व्रत दिये और फिर गिरनारजी लगभग ४ महिने में पहुंच कर एक वंदना की फिर सतरंजा (पालीताना) सोनगढ़ आदि की यात्रा करते हुए आप अहमदाबाद पधारे। वहा पर अपने साथ में लायी हुई ब्रह्मचारिणी अगूरीबाई को आर्यिका दीक्षा दी और उनका शुभ नाम श्रुतमती जी रखा। वहां से विहार कर तल्जोद ग्राम स्टेशन पर (गुजरात) में चातुर्मास किया और फिर वहां से पावागढ की ओर विहार किया और पावागढ़ पहुंचकर व दनायें पावागढ़ क्षेत्र की करी। वहां से आपने वागड़ प्रान्त का ओर विहार किया और कुशलगढ़ पहुंचे वहां से कुछ दूरी पर एक मन्दिर है जो कि जीर्ण-शीर्ण हो गया था। आपने वहां के मार्मिक स्थल को देखकर उसके जीर्णोद्धार के लिये प्रस्ताव कुशलगढ़ समाज के सामने रखा। उसी समय वहां पर १॥ हजार रुपया इकट्ठा हो गया। जिसका कि जीर्णोद्धार आज हो चुका है। वहां से आप अंदेश्वर आदि क्षेत्रों के दर्शन करते हुए वांसवाड़ा पधारे वहां पर एक महीना रहे वहा आपने वागड़ के छोटे २ गांवों की भूमि को पवित्र करते हुए पालोदा में पदार्पण किया वहां की समाज ने आपकी प्रेरणा से प्रेरित होकर तथा आपके संयम त्याग व चारित्र से प्ररित होकर आपसे मान–स्तम्भ की रचना मन्दिर जी में करने का संकल्प किया। वहाँ से विहार करते हुए आप सलूम्बर पधारे जहां पर जल मन्दिर एक तीर्थ स्थान है वहां के सेठ श्री बदामीलालजी ने आपसे प्रभावित होकर जल मन्दिर पर इसी वर्ष शिखर बनाने की प्रतिज्ञा की तथा केशरियाजी के मन्दिर में हूमड़ जाति ने मानस्तंभ निर्माण करने का संकल्प किया सलूम्बर में ही आपने उदयपुर में

चातुर्मास करने का वचन दिया जहां पर १०--११ जगह से लोग काफी तादाद में आये हुए थे। तत्पश्चात उदयपुर में चातुर्मास के लिये आप आ पहुंचे। जहां पर महती धर्म प्रभावना हुइ। आप हमेशा ही ध्यानाध्यन में रत रहते हैं। आप जहां कहीं पर भी विहार करते हैं। वहां पर आपके प्रवचन प्रातः ८ से ९ और दोपहर में ३ से ४ बजे तक आध्यात्मिक विषयों पर सारगर्भित, सरल मधुर और ओजपूर्ण भाषा में होते हैं जिनको सुनकर मनुष्यों के हृदय गद-गद हो जाते हैं। और मुक्त कंठ से लोग आपकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं, विरोधियों के प्रति भी आपके सम भाव ही रहते है। आप सतत् स्वतः रचना भी करते हैं। अभी आप प्रवोध सार तत्व दर्शन लिख रहे हैं, जिसके तीन भाग हैं। दो भाग छप चुके हैं। तीसरा भाग अभी चल रहा है, प्रथम भाग देहली से प्रकाशित भी हो चुका है, जो कि पाठक के चित्त को शिघ्र ही आकर्षित कर लेता है। इस समय आपके साथ मात्र क्षुल्लक वीर सागरजी हैं।

महापुरुषों के जीवन के विषय में कुछ भी लिख सकना श्रावक की शक्ति के वाहर होता है उनके गुणों का वर्णन नहीं किया जा सकता है। फिर भी मेरी अपनी अल्प बुद्धि से जो संक्षिप्त परिचय लिखा गया है पाठक गण उसके महत्व को समझें और विचार करें कि हम भी ऐसे ही बनें। ऐसी ही बनें ऐसी ही हमारी कामना है। जो गलितयां लिखने में रह गयी हों उन्हें पाठक गण अबोध समझ कर क्षमा कर दें तथा इस त्यागमयी एवं पवित्र जीवन के विपय को पढ़ने में अपना अमूल्य समय दें।

—बा. ब्र. कुसुम लता एम. ए.

सोलह कारण भावना की विषय सूची

इति विषयानुक्रमणिका

श्री १०८ आचार्य कल्प ज्ञानभूषणजी महाराज

॥ श्री वीतरागाय नमः ॥

सोलह कारण भावना

रचयिता :—

आचार्य रत्न १०८ श्री देशभूषणजी महाराज के शिष्य

परम पूज्य श्री १०८ आचार्य कल्प

ज्ञानभूषणजी महाराज

प्रकाशिका :—

बाल ब्र० कुसुमलता जैन एम० ए०

मुद्रक :—

न्यू महावीर प्रिन्टर्स, उदयपुर ।

द्वितीयावृत्ति
१९०० प्रति

कार्तिक कृष्णा पंचमी सं० २०३२
मूल्य : सदुपयोग

सोलह कारण भावना में दातारों के नाम

२५१) श्री केशूलालजी खेमराजजी जैन नागदा उदयपुर

२५१) श्री सोहनलालजी गांधी सलूम्बर

२५१) श्री नवलचन्दजी रूपावत जैन करावली

७७६) श्री उथरदा दि० जैन समाज

८०१) श्री दि० जैन समाज गुड़ली

५०१) श्री दि० जैन समाज कुरावड़

३०१) श्री दि० जैन समाज मोड़ी

२२१) श्री सोहनलालजी संगावत उदयपुर

१०१) ब्र० मगनबाई हुमड़ उदयपुर

५०१) श्री संतोषलालजी की मां कतूबाई धर्मपत्नी खेमराजी मेहता उदयपुर

३७५८) रुपया

सोलह कारण भावना

ॐ नमः सिद्धेभ्यः ॐ नमः सिद्धेभ्यः ॐ नमः सिद्धेभ्यः णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं ॥

दर्शन विशुद्धि

सम्यक्त्व ही मोक्ष का मूल है। जिस प्रकार जड़ के बिना वृक्ष नहीं ठहर सकता, न वृद्धि को पा सकता है, न शाखायें पत्ते पुष्प फल की वृद्धि हो सकती है और उस वृक्ष की स्थिति भी नहीं रह जाती है हवा के लगने से गिर सकता है। उसी तरह सम्यक्त्व के अभाव में ज्ञान और क्रिया रूप जो चारित्र है वह भी मिथ्यात्व को ही प्राप्त होता है। क्योंकि वह ज्ञान दर्शन मोह की संगति से मिथ्याज्ञान मिथ्यादर्शन इस कलंक से दूषित होता है।

सम्यक्त्व की प्राप्ति

प्रथम सम्यक्त्व के योग्य भव्य पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तक सेनी अनादि मिथ्यादृष्टि जीव पहले क्षयोपशम लब्धि को प्राप्त होता है। तत्पश्चात देशनालब्धि तत्पश्चात प्रायोग्यलब्धि

उसके पश्चात विशुद्धिलब्धि सबके अन्त में करणलब्धि को प्राप्त होता है। इनमें से पहले की ४ लब्धियाँ तो भव्य और अभव्य दोनों ही प्रकार के संसारी जीवों को प्राप्त हो जाती है परन्तु करणलब्धि भव्य जीव को ही प्राप्त होती है। उस सम्यक्त्व को बाह्य से जानने के चार कारण हैं प्रशम, संवेग, अनुकम्पा आस्तिक्य। ये गुण सम्यग्दृष्टि में सब पाये जाते हैं।

जब भव्य जीव जो अनादि मिथ्यादृष्टि है उसको प्रथम क्षयोपशम लब्धि होती है वह ज्ञानावरणादि कर्मों की सर्व घातिया प्रकृतियों का उदयाभावी क्षय सदवस्था रूप उपशम तथा देशघाती प्रकृति का उदय जिस काल में होता है, वह जीव के क्षयोपशम-लब्धि होती है।

देशनालब्धि जब पंचेन्द्रिय सेनी भव्य जीव सद्धर्म से प्रेम करता है तथा द्वेष का त्याग करता है और सुदेष्टा गुरु के उपदेश को श्रवण कर उसको धारण करने की शक्ति जब होती है तब देशनालब्धि होती है। प्रायोग्यलब्धि कर्मों की स्थिति खण्ड न होकर अन्तः कोटाःकोटी सागर प्रमाण जब रह जाय इसको प्रायोग्यलब्धि कहते हैं। जब कर्मों के फल देने की शक्ति हीन-हीन होती जाती है तब परिणामों में से कलुषित भावों की प्रवृत्ति क्षीण हो जाती है तब विशुद्धिलब्धि होती है। इन चारों लब्धियों के प्रभाव से जीवों के परिणामों में कलुषता करने वाली अनन्तानुबन्धी क्रोध मान माया लोभ इन कषायों की मन्दता का होना अनिवार्य होता है क्योंकि अनुभाग और स्थितिबन्ध कषायों से ही जीव के होते है कषायों की मन्दता के कारण ही यह जीव सम्यक्त्व के सन्मुख होता है। इसके बाद करणलब्धि होती है।

करणलब्धि के तीन भेद हैं अधःकरण अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण। अधःकरण में परिणामों की विशुद्धता अधः—

नीचे के परिणामों में ऊपर के परिणामों में सदृशता नहीं होती हैं तथा प्रथम समय, दूसरे समय, तीसरे समय, चोथे समय में अधः-करण करने वाले जीवां के समान परिणाम भी होते हैं और अस-मान भी होते हैं। नीचे के परिणाम और ऊपर के परिणाम नहीं मिलते। मध्य के परिणाम सदृश भी होते हैं और विसदृश भी होते हैं। नीचे के परिणाम एक से दूसरे जीव के नहीं मिलते और ऊपर के परिणाम भी समान नहीं मिलते हैं। अपूर्वकरण यह करण करने वाले भव्य जीवों के परिणाम अपूर्व अपूर्व होते हैं उनके परिणामों में समानता नीचे ऊपर मध्य में नहीं रह जाती इसी कारण अपूर्वकरण करते हैं। अपूर्वकरण को करके जब जीव मिथ्यात्व रूपी योद्धा से लड़ने के सन्मुख खड़ा हो जाता है। जिस प्रकार कोई शूरवीर महापुरुष कवच पहन कर हाथ में शस्त्र लेकर युद्धभूमि में जा डटता है और नगाड़े की ध्वनी की ओर दृष्टि डालता है कि कब नगाड़ा बजे और मैं युद्ध करके बेरी का नाश करूँ। इसी प्रकार सम्यक्त्व को प्राप्त होने वाला अपूर्वकरण करने वाला जीव कर्मों को नाश करने का प्रयत्न करता है। पुनः अनिवृतिकरण को प्राप्त होता है वहां पर उनके भावों में विशेष विशुद्धता हो जाती है जिससे मिथ्यात्व के तीन खण्ड करता है। चावल तुष कनी के समान मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यग्प्रकृति रूप करता है और अनिवृत्तकरण के अन्तिम भाग में इन तीनों प्रकृ-तियों को तथा अनन्तानुबन्धी चार कषायों को दबा देता है इनके दब जाने पर प्रथमोपशम सम्यक्त्व अनादि व सादि मिथ्यादृष्टि को प्राप्त होता है यहाँ पर संक्षेप से कही गई लब्धियाँ हैं विशेष गोमट्टसार, जीवकाण्ड व लब्धिसार से जान लेना चाहिये।

सम्यक्त्व को प्राप्त कर भव्य जीव तीर्थङ्कर नाम कर्म का भी आस्रव बन्ध कर सकता है। तथा सम्यक्त्व के साथ जो

ज्ञान व चारित्र होता है वह सम्यक्ज्ञान और सम्यक्चारित्र समीचीनता को प्राप्त होते है। अथवा सम्यक्ज्ञान सम्यक्चारित्र ऐसी सम्यक् संज्ञा को प्राप्त होता है। इन तीनों का परस्पर सहयोग व्यवहार मोक्षमार्ग कहलाता हैं। तथा जब ये तीनों आत्म रूप में अभिन्नता को प्राप्त होती है तब निश्चय मोक्षमार्ग प्रकट होता है। यह निश्चय मोक्षमार्गी आत्मा ही है। ऐसा आत्मा ही केवलज्ञान केवलदर्शन को प्राप्त करता है। जिस प्रकार नींव के विना मकान की बुनियाद नहीं उसी प्रकार सम्यक्त्व के विना ज्ञान चारित्र की स्थिति नहीं रह जाती जहाँ बीज नहीं वहाँ वृक्ष की संभवता नहीं। बीज के विना कोई चाहे कि आम का वृक्ष हो जावेगा व उसमें पत्ते फूल फल शाखायें होगी तथा आम फल भी खाने को मिलेंगे ऐसा कदापि नहीं। विना बीज के वृक्ष की उत्पत्ति नहीं उसी प्रकार सम्यक्त्व के विना मोक्ष नहीं हो सकता।

सम्यग्दर्शन के विषय

जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, और काल ये छह द्रव्य हैं। ये छहों द्रव्य सब लोकाकाश में ठसाठस भरे हुए हैं इन छहों द्रव्यों के निवास क्षेत्र को लोक कहते हैं। इनमें भी काल द्रव्य को छोड़कर शेष द्रव्य बहुप्रदेशी हैं। शरीर के समान होने से ये द्रव्य कायवान कहे जाते हैं। इन पांचों द्रव्यों को पंचास्तिकाय कहते हैं। जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, मोक्ष, पुण्य और पाप ये नव पदार्थ हैं। तथा इनमें से पुण्य पाप दो को निकाल देने पर सात तत्व शेष रह जाते हैं। अर्हन्त, सिद्ध, आचार्य और उपाध्याय साधू (मुनि) ये पांच महागुरु कहलाते हैं। इनकी भक्ति, श्रद्धान ध्यान और पूजा वन्दना करने से सम्यक्त्व गुण विशुद्ध होता है और आत्म रुचि बढ़ती है।

जीवद्रव्य निश्चयनय से सब शुद्ध दर्शन चेतना ज्ञान से युक्त हैं किन्हीं जीवों में अन्तर नहीं सब जीव द्रव्य हैं। व्यवहार से जो चार प्राणों से जीते थे जी रहे हैं जीवेंगे वे जीव कहलाते हैं। इन जीवों के प्राण कम से कम चार और बढ़ते-बढ़ते पंचेन्द्रिय जीव के दस प्राण हो जाते हैं। एकेन्द्रिय जीव के चार प्राण दो इन्द्रिय के छह प्राण तीन इन्द्रिय के सात चार इन्द्रिय के आठ असेनी पंचेन्द्रिय के नव प्राण तथा संज्ञी पंचेन्द्रिय के दस प्राण होते हैं। ये संसारी जीव चौदह मार्गणाओं में बंटे हुये हैं। इसलिये इनको मार्गणा कहते हैं। क्योंकि इनमें जीव खोजे जाते हैं। चौदह गुणस्थान हैं उनमें जीव निवास करते हैं। तथा चौदह जीव समासों में स्थित हो रहे हैं वे सब जीवद्रव्य हैं वे सबलोक में भरे हुए जीव अनन्त हैं जो संसार अवस्था से मुक्त हो गये हैं वे सिद्ध जीव कहे गये हैं। अथवा निकल परमात्मा कहलाते हैं।

अजीवद्रव्य पाँच हैं पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल। पुद्गल द्रव्य जिसमें काला नीला पीला लाल श्वेत ये पाँच रूप और सुगन्ध दुर्गन्ध दो गन्ध मीठा, खट्टा कडुआ कषायला चटपटा ये पाँच रस तथा भारी हलका कठोर कोमल स्निग्ध रूक्ष शीत उष्ण ये आठ स्पर्श ये बीस गुण पाये जाते हैं उसको पुद्गलद्रव्य कहते हैं। यह पुद्गलद्रव्य अणु स्कन्ध के भेद से दो प्रकार का है। जिसमें पूरण गलन होता हो वह पुद्गल द्रव्य है। धर्म द्रव्य अधर्म द्रव्य ये दोनों तथा आकाश ये तीनों द्रव्य अखण्ड द्रव्य हैं तीनों लोकों में विद्यमान हैं। कालद्रव्य असंख्यात हैं वे सब कालाणु जुदे-जुदे रत्नराशि के समान लोक में भरे हुए हैं। इन छहो द्रव्यों में जीव और पुद्गल दोनों परिणमन शील हैं। जीव और पुद्गल को चलने में सहायक हो वह धर्म द्रव्य है ठहरते हुए जीव और पुद्गलों को सहायक होता है वह अधर्म द्रव्य है

जीवादि पाँच द्रव्यों को स्थान देता है उसको आकाश कहते हैं। जो परिवर्तनशील जीवादि द्रव्यों के परिवर्तन में सहायक होता है वह काल द्रव्य है। व्यवहार काल के अनेक भेद हैं जैसे घड़ी, घण्टा, सेकिन्ड, पल, मुहूर्त, दिन, रात, सप्ताह, मास, पक्ष, अयन, वर्ष सम्मत्सर इत्यादि। जो द्रव्य वहुप्रदेशी हैं उनको अस्तिकाय कहते हैं। जीव द्रव्य असंख्यात प्रदेशी हैं तथा धर्म, अधर्म, असंख्यात प्रदेशी है पुद्गल द्रव्य में संख्यात, असंख्यात, अनन्त प्रदेश हैं। आकाश अनन्तानन्त प्रदेश वाला है। वह आकाश लोक और अलोक में विभक्त हैं। ये ही पांच द्रव्य पंचास्तिकाय कहलाते हैं।

नव पदार्थ—जीव के मूल में दो भेद हैं एक संसारी दूसरे मुक्त। संसारी जीवों के अनेक भेद हैं। जो इन्द्रिय और प्राणों से जीता है, विचार करता है, रोता गाता खेलता है, खाना खाता है, दौड़ता है, सूंघता है, हलन चलन क्रिया करता है, वह जीव है उस जीव के अनेक भेद हैं। पृथ्वीकाय, जलकाय, अग्निकाय, वायु काय, वनस्पतिकाय नित्य निगोद, इतर निगोद ये सव सूक्ष्म, वादर, पर्याप्त अपर्याप्त, लब्धि पर्याप्त के भेदों से युक्त हैं इनको स्थावर कहते हैं। तथा दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय और चार इन्द्रिय ये विकलेन्द्रिय कहलाते हैं सेनी असेनी पंचेन्द्रिय सकलेन्द्रिय ये सव जीव प्रर्याप्त अप्रर्याप्त के भेद से दो प्रकार के हैं। पंचेन्द्रिय के भी अनेक भेद हैं जैसे मनुष्य, नारकी, देव, तिर्यञ्च इनमें भी अपनी-अपनी प्रर्याय की अपेक्षाकृत अनेक भेद हैं जैसे जलचर, थलचर और नभचर कर्मभूमियां भोगभूमियां इत्यादि भेद हैं। मुक्त जीव कर्ममल कलंक से रहित असंसारी मुक्त सिद्धात्मा हैं जो औदारिक वैक्रियिक आहारक तैजस कार्माण शरीरों से रहित हैं।

जन्म, मरण, वेदना, भूख, प्यास, माया, कषाय, वुढ़ापा, वल,

यौवन तथा प्रकृति स्थिति अनुभाग प्रदेश रूप बंधन से रहित हैं। चारोगति रूप चक्र से वाहर निकल गये हैं इसलिए इनको निकल अशरीरी परमात्मा सिद्ध कहते हैं अथवा मुक्त जीव कहलाते हैं। जीव को छोड़कर सब शेष अजीव पदार्थ कहलाते हैं।

आश्रव बंध पदार्थ का स्वरूप

जीव और अजीव के संयोग से होने वाले शुभ अशुभ रूप योगों की प्रवृत्ति को आस्रव कहते हैं।

जो कार्माणवर्गणायें आस्रवित हुई हैं वे ज्ञानावर्णादि कर्म रूप से परिणमन कर के आत्मा के प्रदेशों में दूध पानी की तरह एकमेक हो जाते हैं वही बंध पदार्थ है। वह बंध भावबंध द्रव्यबंध के भेद से दो प्रकार का है प्रकृति स्थिति अनुभाग प्रदेश बंध की अपेक्षा चार प्रकार का है। यह बंधमिथ्यात्व असंयम प्रमाद कषाय और योगों से होता है। दूसरी प्रकार राग द्वेष, माया, मिथ्यात्व, असंयम, तथा अशुभ ध्यान दुर्लेश्यायें तथा आहार भय मैथुन और परिग्रहासक्त रूप संज्ञाओं तथा मन वचन काय की अशुभ प्रवृत्ति से ही हुआ करता है। जिस प्रकार तालाव में पानी आकर ठहर जाता है उसी प्रकार जीव के संयोग से तथा अजीव के संयोग से जो कर्म ठहर जाता है वह बंध है। आस्रव आठ कर्मों में विभाजित होकर बंध को प्राप्त होता है। जीव के प्रदेशों में एकमेक होकर शक्कर पानी की तरह मिल जाता है। यही बंध है। ज्ञानावर्णादि रूप होकर आत्मिक गुणों को आच्छादन कर लेते हैं।

संवर पदार्थ का स्वरूप

जिन भावों के द्वारा आस्रव हुआ करता था उन भावों को परिवर्तन करने पर आस्रव रुक जाता है। मिथ्यात्व को रोकने के लिए सम्यक्त्व रूपी वज्र कपाट को बंद करने से मिथ्यात्व के उदय से होने वाला आस्रव रुक जाता है। यह मिथ्यात्व संवर हुआ। संयम के धारण करने पर असंयम से होने वाले आस्रव रुक जाते है। समितियों के पालने से प्रमादों से होने वाला पापास्रव रुक जाता है। अनर्थदण्डों के त्याग करने पर तथा दस धर्म के धारण करने से अनर्थदण्डों से होने वाले आश्रवों का भी संवर होता है। तथा कषायों से होने वाले आस्रवों का भी संवर होता है तथा गुप्तियों के पालन करने से योगों से होने वाले आस्रव का संवर होता है। परीषहों के जीतने पर कषायों का तथा दण्डों की संवर इन्द्रिय वासना तथा दण्डों से होने वाला आस्रव का संवर होता है। इस प्रकार संवर पदार्थ का स्वरूप कहा।

निर्जरा पदार्थ

निर्जरा दो प्रकार की है एक सविपाक दूसरी अवि-पाका जो कर्म अपना फल देकर खिर जाते है वह सविपाक निर्जरा है। जिस प्रकार काल पाय आम पककर गिर जाते हैं उसी प्रकार कर्म उदय में आकर अपना तीव्र मन्द फल देकर खिर जाते हैं वह सविपाक निर्जरा है। दूसरी जो विना समय के ही

उदीरणा कर नष्ट कर दिये जाते हैं वह दूसरी निर्जरा है जैसे आम पकने के ही पहले माली आमों को तोड़कर पाल में लगा कर पकाकर फल भोग लेता है। उसी प्रकार संयम तप के द्वारा कर्मों के अनुभाग तथा विपाक होने के पहले ही उदय में लाकर नष्ट कर देना यह दूसरी अविपाक निर्जरा है। यह निर्जरा संयमी योगियों के ही होती है क्योंकि वे परीषह उपसर्गों को जीतते हुए दशलक्षण धर्म में प्रवृत्त होने से व तप के द्वारा कर्मों के फल देने की शक्ति के उत्पन्न होने से पहले ही उदीरणा कर नष्ट कर देते हैं उनके अकाम निर्जरा होती है। यह निर्जरा पदार्थ है।

मोक्ष पदार्थ—जव एक देश कर्मों के क्षय को निर्जरा कहते हैं। आत्मा से लगे हुए तथा जो प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश बंध था उन चारों प्रकार के बन्धों का तथा ज्ञानावरण आदि द्रव्य कर्म का क्षय होना तथा आत्मा से सम्बन्ध टूट जाना तथा औदारिकादि नव कर्मों का अत्यन्त अभाव होना, जो अवस्था जीव को कभी प्राप्त नहीं हुई और उसके वाद भी कोई अवस्था नहीं ऐसी अवस्था का प्राप्त होना ही मोक्ष है इस प्रकार मोक्ष पदार्थ का स्वरूप कहा।

पुण्य पदार्थ

जो अपने शुभ भावों से तथा सम्यक्त्व अणुव्रत व महाव्रत, दान, पूजा, शील, संयम व उपवासादि शुभ भावना की उनसे जो पुण्य उपार्जन किया। उस पुण्य का कार्य जीवों को देवगति में इन्द्रपद, अहमिन्द्रपद, चक्रवर्तीपद, नारायण, प्रतिनारायण, वलभद्र, तीर्थङ्कर और कामदेव पदों में जीवों को रखता है। तथा भोगभूमि के सुखों को व मनुष्य गति, उच्चकुल, उच्चजाति उच्चगोत्रों में

रखता है। क्षत्रिय ब्राह्मण वैश्य आदि वर्णो में ले जाता है तथा सुन्दर शरीर निरोग योग्य स्त्री, पुत्र, माता, पिता, मित्र, बांधव आदि की प्राप्ति कराता है वह पुण्य पदार्थ है। सातावेदनीय, तिर्यञ्च, मनुष्य, देव, आयु तथा मनुष्य, देव गत्यानुपूर्वी, पंचेन्द्रिय जाति औदारिक, वैक्रियिक, आहारक तैजस और कार्मणि ये पांच बन्धन, औदारिकादि तीन औदारिक, वैक्रियिक, आहारक आंगोपांग शुभ रंग, शुभ गंध, शुभ रस, शुभ स्पर्श, समचतुरस्र संस्थान वज्रवृषभ नाराच सहनन, अगुरु लघु, पर घात, उच्छवास, आतप उद्योत इत्यादि पुण्य से ही जीव को प्राप्त होती हैं। यह पुण्य पदार्थ का स्वरूप कहा।

पाप पदार्थ

आर्त ध्यान रोद्र ध्यान तथा मिथ्यात्व कषाय रूप व असं-यम रूप तथा हिंसा, झूठ, चोरी कुशील सेवन परिग्रह में आसक्ति होने से पापास्रव होता है जिससे जी नरक, निगोद पंच स्थावरों में जन्म लेकर बहुत काल तक दुख भोगता है वही पाप पदार्थ है वह पुण्य पदार्थ से विपरीत है। इन कहे गये नव पदार्थों में से पुण्य पाप पदार्थों को छोड़कर सात तत्व कहलाते हैं। जीव अजीव, आस्रव बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष ये सात तत्वों को जानकर श्रद्धान करना सो दर्शनविशुद्धि है।

इन कहे गये सातों तत्वों में जीव दर्शनोंपयोग, ज्ञानोपयोग मय है। जिससे सामान्य महासत्ता रूप पदार्थों का अवलोकन होता है वह दर्शनपयोग है उसके चार भेद हैं चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन, केवलदर्शन। ज्ञानोपयोग के आठ भेद हैं मत्यज्ञान, श्रुताज्ञान, विभंगा अवधिज्ञान ये तीनों मिथ्याज्ञान और सम्यग्ज्ञान रूप दो प्रकार के होते हैं मनःपर्यय और केवलज्ञान

इस प्रकार ज्ञानोपयोग के आठ भेद हैं। जिन जीवों के विचार करने की शक्ति नहीं होती वे जीव अमनस्क और जिनके विचार करने की शक्ति होती है वे जीव समनस्क कहलाते हैं।

इन्द्रियाँ पांच होती हैं वे पांचों इन्द्रियाँ दो प्रकार की होती है एक द्रव्य इन्द्रिय दूसरी भाव इन्द्रिय। जो पुद्गल नो कर्मों से इन्द्रिय आकार रूप नाम कर्म के उदयके अनुसार व मतिज्ञानावरण वीर्यान्तराय कर्म के क्षयोपशम ही अंतरंग कारण को प्राप्त निर्माण हुई है उनको द्रव्यइन्द्रिय कहते हैं और जो उनका उपकार करते हैं उनको उपकरण कहते हैं। जैसे फलक वन्ही व अभ्यन्तर सफेद मण्डल व उसके बीच में काला मण्डल लब्धि रूप आत्म प्रदेश होते हैं उनको भावेन्द्रिय कहते हैं। इन्द्रियां पांच हैं स्पर्शन, रसना, घ्राण, नेत्र और कान इनमें भी इनका आकार है। स्पर्शन इन्द्रिय अनेक आकार वाली है रसना इन्द्रिय खुरपा के आकार वाली है। घ्राण इन्द्रिय तिल पुष्प तथा नेत्र इन्द्रिय मसूर की दाल के आकार वाली है कर्ण इन्द्रिय जो केनाल के समान है।

जीव पांच भावों से युक्त होते हैं औपशमिक भाव क्षायक भाव मिश्र भाव औदायिक भाव पारिणामिक भाव हैं। दर्शन मोह की तीन, चारित्र मोह की चार, अनन्तानुबन्धी क्रोध मान माया लोभ इन सात प्रकृतियों के दबने पर जो भाव होता है वह औपशमिक भाव है। तथा शेष चारित्र मोहनीय की २१ प्रकृति दव जाने से भी उपशम होता है कही गई सात प्रकृतियों तथा ज्ञानावर्ण, दर्शनावर्ण मोहनीय की दो दर्शन और चारित्र मोह तथा अन्तराय कर्म के क्षय होने पर जीव के जो भाव होते हैं उनको क्षायक भाव कहते हैं। जो भाव सर्वघातिया कर्मों के उदयाभावी क्षय तथा सदवस्था रूप उपशम देशघातिया कर्म प्रकृतियों का उदय होने पर जीवों के जो भाव होते हैं उनको

क्षयोपशम भाव कहते हैं। कर्मों के उदय में आने पर जीवों के जो भाव होते हैं उनको औदायिक भाव कहते हैं। जीवों के जो स्वाभाविक भाव होते हैं उन भावों को पारिणामिक भाव कहते हैं। पारिणामिक भावों में कर्मों का उपशम या क्षय क्षयोपशम व उदय कारण नहीं होता इसलिये इनको पारिणामिक भाव कहते हैं। इन भावों से युक्त जितने जीव हैं वे सव जीव तत्व हैं। पदार्थों का जैसा स्वरूप कहा वैसा ही जानना। पुण्य पाप रहित सात तत्व हैं।

पंच गुरु भक्ति

अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और मुनियों को पंच गुरू कहते हैं। उनके गुणों में अनुराग करना, गुणों का वार-वार चिन्तवन करना, उनके वताये हुए मार्ग का अनुकरण करना इत्यादि भावनाओं से गुरू भक्ति होती हैं। तथा आचार्य उपाध्याय साधुओं की वैश्यावृत्ति करना आहार औषधि अभयदान ज्ञान व संयम के उपकार करने वाले उपकरण दान देना। वस्तिका फलक पलाल इत्यादि साधनों का जुटा देना, हाथ पैर शरीर का मर्दन करना, चलकर आये हों तो हाथ पैरों का दवाना तथा उच्चासन पर वैठना पाठ, पूजा, स्तुति विनय करना यह पंच गुरू भक्ति है।

अरहंत—जिन्होंने घातिया कर्मों की ४७ प्रकृति तथा तीन आयु १३ नाम कर्म की प्रकृतियों का तथा त्रेषठ प्रकृतियों का क्षय कर दिया है। तथा जो जन्म के दस अतिशय केवलज्ञान के दसदेवकृत १४ अतिशय तथा आठ प्रातिहार समवसरण में वारह सभाओं की प्राप्ति तथा अनन्त दर्शन अनन्त ज्ञान सुख क्षायक सम्यक्त्व क्षायक वीर्य इस प्रकार जो अन्तरंग लक्ष्मी तथा वाह्य

लक्ष्मी से युक्त वीतराग सर्वज्ञ हितोपदेश अरहंत भगवान स परमात्मा हैं।

सिद्ध—जिन्होंने अनादि काल से कर्म रूप कीचड़ लगी थी उसको नाश कर दिया है। तथा ज्ञानावर्णादि आठों कर्मों को तथा औदारिकादि नो कर्म रागद्वेषादि भाव कर्मों को समूल क्षय कर दिया है। तथा जिन्होंने अनंत दर्शन ज्ञान सम्यक्त्व अनन्त वीर्य सुख अगुरुलघु अव्यावाध सूक्ष्मत्व अवगाहनत्व ऐसे आठ गुणों प्राप्त हुए हैं वे सिद्ध परमेष्ठी हैं उनको मैं नमस्कार करता हूँ। वे सिद्ध कल्पकाल सहस्त्रों वर्ष वीत जाने पर भी चलायमान नहीं होते वे लोक के अन्त में विराजमान हैं। सिद्धात्मा उत्पाद व्यय ध्रौव्यादिगुणों से युक्त हैं। सब द्रव्य और उनकी होने वाली अनन्त पर्यायों को एक समय में जानते हैं। तीन काल तीन लोक में जितने ज्ञेय हैं उनको देखते हैं जानते हैं।

आचार्य—जो पंचाचरों का निर्दोष पालन करते हैं। तथा वारह प्रकार के तपों को तपते हैं दश धर्मों में अनुरक्त रहकर छह आवश्यकों का व गुप्ति त्रय का निर्दोष पालन करते हैं वे साधु के अट्ठाईस मूलगुणों सहित आचरण स्वयं करते हैं और शिष्यों से पालन करवाते हैं। तथा शिष्यों को शिक्षा व दीक्षा देते हैं। शिष्यों को प्रमाद से चारित्र में लगे हुए दोषों का प्रायश्चित देकर चारित्र में दृढ़ करते हैं वे आचार्य परमेष्ठी कहलाते हैं। वे संघ के अधिष्ठाता व संघ के संचालक होते हैं। जो संसार सागर के दुःखों में मगन हैं उन जीवों को दुःखों से वचने रूप उपाय का उपदेश देते हैं अथवा मोक्ष मार्ग का उपदेश देते हैं। दुःखों से छुड़ाने वाली शिक्षा दीक्षा देते हैं वे आचार्य परमेष्ठी हैं। उनके गुणों में अनुराग करना सेवा वैयावृत्ति करना यह आचार्य भक्ति है।

उपाध्याय—ये ग्यारह अंग व चौदह पूर्व रूप श्रुत जानने वाले होते हैं। वे शास्त्रों को पढ़ते हैं तथा पढ़ाते हैं वे उपाध्याय परमेष्ठी हैं। और मुनियों के अट्ठाईस मूल गुणों का विधि पूर्वक निर्दोष पालन करते हैं वे उपाध्याय परमेष्ठी हैं।

साधु—जो संसार शरीर और भोगों से विरक्त होकर पांच महाव्रत, पांच समिति, पांच इन्द्रिय निरोध छह आवश्यक तथा केशलोंच करना खड़े आहार लेना एकबार लेना, नग्न रहना दातोंन नहीं करना, स्नान नहीं करना, भूमि पर सोना इन मूल-गुणों को भाव सहित निरतिचार पालन करते हैं वे साधु परमेष्ठी हैं। जिन्होंने अन्तरंग परिग्रह मिथ्यात्व, क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्य, रति, अरति शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, नपुसंकवेद तथा पुरुषवेद इस प्रकार १४ प्रकार के अतरंग परिग्रह का त्याग किया है। तथा क्षेत्र वास्तु, धन, धान्य, दासी, दास, सोना, चांदी, कुप्य, भाण्ड इस प्रकार बाह्य दस प्रकार का परिग्रह व शरीर से जिन्होंने राग छोड़ दिया है जो ध्यानाध्ययन में तल्लीन हैं। तथा आरम्भ और आशाओं से रहित हैं। सरम्भ समारम्भ आरम्भ रूप पापों का मन वचन काय से त्याग करते हैं। तथा सम्यग्दर्शन, सम्य-ग्ज्ञान, सम्यग्चारित्र और तप इन चारों आराधनाओं को आरा-धना करते हैं। समाधि के साधन में लवलीन रहते हैं वे साधु परमेष्ठी हैं। उनकी भक्ति मन वचन काय से करने से सम्यक्त्व गुण उज्ज्वल होता है। कहे गये द्रव्य अस्तिकाय पदार्थ और तत्व व पंच गुरुओं में श्रद्धान भक्ति नहीं होती तब तक सम्यक्त्व नहीं होता। इसलिये परमार्थ से कहे गये पदार्थों पर श्रद्धान भावना पूर्वक करने पर सम्यक्त्व होता है। इसका स्पष्टीकरण रूप काव्य का अर्थ कहते हैं।

जो अनन्त भव भ्रमण का कारण तो मिथ्यात्व ही है वह मिथ्यात्व जिनेन्द्र भगवान के द्वारा बताये हुए तत्वों के विपरीत

कुतत्त्वों को तत्व, अधर्म को धर्म, अदेव को देव, कगुरू को गुरू कहता है। जिस प्रकार जिसको काले सर्प ने डस लिया है उसको कडुवा नीम ही मीठा लगता है उसी प्रकार मिथ्यात्वी जीव की रुचि होती है उस मिथ्यात्व को छोड़ना चाहिये। उस मिथ्यात्व के सहकारी सात व्यसन, सात भय, शंका, कांक्षा, रूप, निदान, वन्ध, निर्विचिकित्सादि आठ मल दोष। आठ मद ज्ञान पूजादि, तथा छह अनायतन तथा तीन मूढ़ता ये पंचविंशति सम्यक्त्व के मल हैं ये ही भावरूप संसार के जन्म देने वाली माता के समान है। शंका कांक्षा अन्य दृष्टि की प्रशंसा तथा मिथ्यादृष्टि देवों की स्तुति तथा सम्यग्दृष्टि सयमियों के दोषों को देख उनका अपवाद करना तथा मिथ्यादृष्टि साधु पाखण्डी के तप की प्रशंसा तथा मिथ्याचरण करने वालों की प्रशंसा करना ये सब मिथ्यात्व कर्म के सहयोगी कहे।

जो संसार में भ्रमण के कारण हैं उन कारणों को प्रथम में त्याग करने का प्रयत्न करना चाहिये क्योंकि कारण विना कार्य की सम्भावना नहीं। कारण के अभाव में ही कार्य का अभाव होते हुए देखा जाता है। कारणों के उपस्थित रहते हुए आत्मिक गुणों का विकास नहीं हो सकता वही यहां स्पष्ट किया गया है। वे कारण कौन-कौन से हैं ? ऐसा पूछे जाने पर आचार्य कहते हैं उनका नामसंख्या गिना दी गई है। उनका विशेष रूप कहते हैं। सात भय, सात व्यसन शंकादिक, आठ दोष, आठ मद, छह अनायतन, तीन मूढ़ता ये सब मिथ्यात्व रूपी राजा के संरक्षक हैं, जब तक संरक्षक मौजूद खड़े हैं तब तक राजा को कौन मार सकता है। जब तक राजा का बल नष्ट नहीं किया जायगा तब तक राजा को कोई नष्ट नहीं कर सकता। इसलिये मिथ्यात्व के बल को प्रथम नष्ट कर मिथ्यात्व को नष्ट करना चाहिये। और सम्यक्त्व के पांच अतीचार ये सब मिलकर चवालीस दोष

हैं इनके नाश होते ही सम्यक्त्वादि अनेक गुणों की आत्मा में प्राप्ति होती हैं। वे गुण संवेग निर्वेग आस्तिक्य सहित प्रथम करुणा भाव प्रमोद आदि अनेक गुण प्रकट होते हैं। संसार शरीर और पंचेन्द्रियों के विषयभूत भोगों से विरक्त परिणामों के होने पर ही सम्यक्त्व स्थिर होता है। तथा सम्यक्त्व के सहायक कारण हैं। सच्चे देवशास्त्र गुरुओं में भक्ति और श्रद्धान होना यह जीव का स्वाभाविक गुण है।

आगे सम्यक्त्व के प्रतिपक्षी दोषों के स्वरूप को कहते हैं।

द्यूत क्रीड़ा व्यसन

जुआ खेलने वाले का कोई विश्वास नहीं करता। ज्वारी प्रथम तो अपने धन का नाश करता है दूसरे अपने पूर्वजों की कीर्ति को नष्ट करता है। ज्वारी मनुष्य अपनी स्त्री पुत्रादिकों को भी दाव पर लगा देता है। ज्वारी मनुष्य धन के न मिलने पर अपने भाई माता पिता पुत्र आदि को मार डालता है। इस व्यसन में पाँडव प्रसिद्ध हुए हैं उनकी कथा हरिवंश व पांडव-पुराण से जानी जा सकती है।

मांस भक्षण व्यसन

यह मांस त्रस पंचेन्द्रिय जीवों के प्राणों का नाश करने पर ही उत्पन्न होता है। वह मांस, गाय, भैंस, बकरा ,भेड़, सूकर, हिरण, मुर्गो, मुर्गा, कबूतर इत्यादि अनेक पंचेन्द्रिय जीवों को मारकर उनके शरीर से प्राप्त होता है। जिसके प्राप्त करने पर महाहिंसा होती है। जिस समय मांस
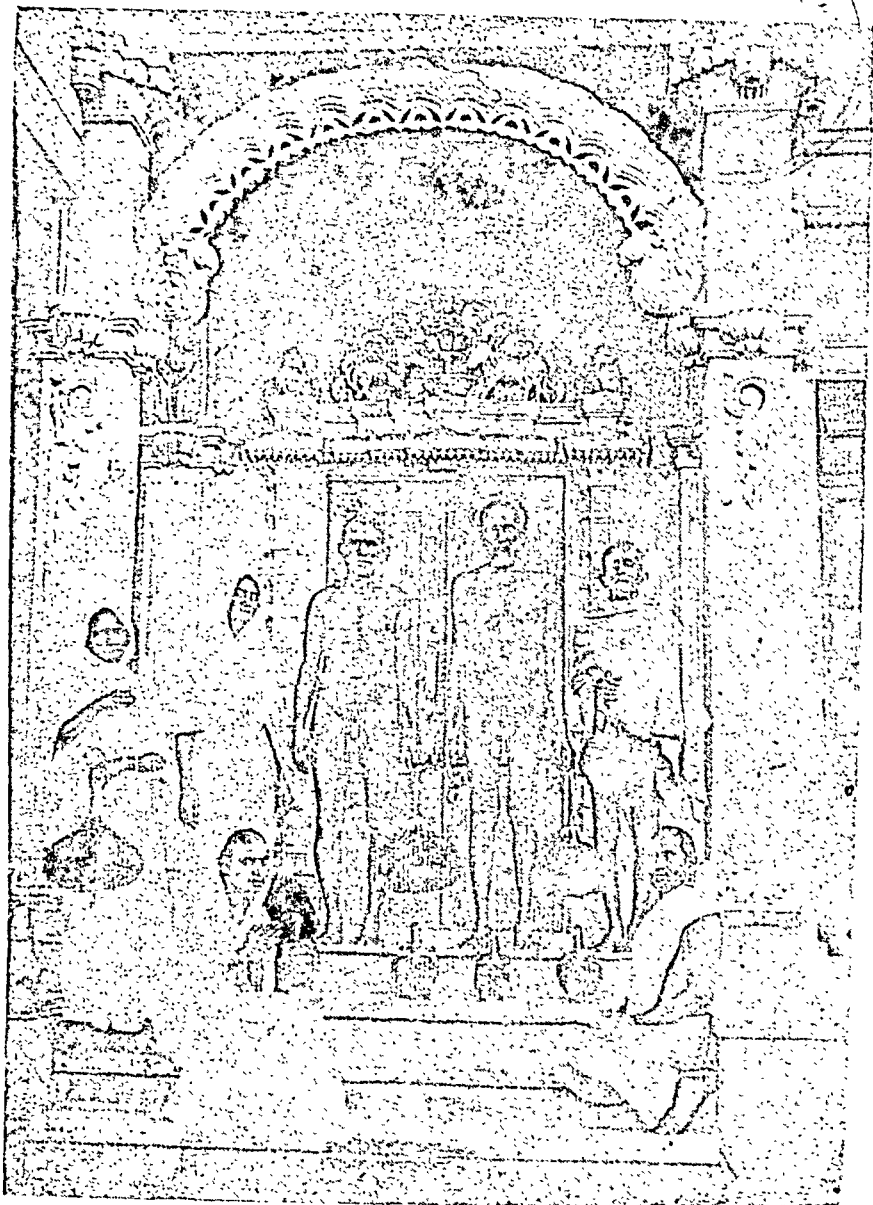
क्षु० वीर सागरजी श्री १०८ पद्मसागरजी श्री १०८ आचार्य
कल्प ज्ञानभूषणजी श्री १०५ आर्यका श्रुतमतीजी
१०५ क्षु० शीतलमती ब्र० कुसुमलताजी

जिस देहधारी के शरीर को छेदन भेदन कर निकाला जाता है उस ही समय में उस देहधारी के आकार के असंख्यात निगोदिया जीव उत्पन्न हो जाते हैं। तथा पकाने पर भी उस मांसपेशी में असंख्यात जीव उत्पन्न हो जाते हैं। वे जीव हाथ के स्पर्श मात्र से मरण को प्राप्त होते हैं जिससे असंख्यात जीवों की हिसा होती है। इस मांस के खाने वालों के हृदय में दया नहीं होती, माँसाहारी मनुष्य जीवों को मारने में जरा भी हिचकता नहीं। वह तो तत्क्षण मार डालते हैं। जहां पर घर में किसी की मृत्यु हो जाती है तब १३ दिन का पात लगता है तथा रजस्वला स्त्री हो जाती है, उसको अशुद्ध कहके स्पर्श नहीं करते। विचार कर देखेंगे वे माँस को फिर कैसे व्यवहार करेंगे ? नहीं करेंगे। माँस खाने में प्रसिद्ध वक राजा की क्या गति हुई। माँस का त्यागी खादिर नाम का खटीक देव गति को प्राप्त हुआ। यह कथा पुराणों में प्रसिद्ध है।

सुरापान व्यसन

यह शराब (मद्य) त्रस जीवों के शरीर से निकला हुआ पसेव है, नीच लोग जब शराब बनाते हैं उसके पहले अनेक वस्तुओं को पानी में गलाकर मटकादि पात्रों में भर मुख बन्द करके मटका को जमीन में गाड़ देते हैं, वही १५ दिन अथवा २० दिन तक पर्यन्त जमीन के भीतर गड़ रहता है। जब वे पदार्थ गलकर (सड़कर) उसमें असंख्यात जीव उत्पन्न हो जाते हैं। तब शराब बनाने वाले उस हांडी को भट्टी पर चढ़ाकर उसमें एक पाइप लगा देते हैं तथा उसके नीचे अग्नि जला देते हैं। वह गला सड़ा पानी उबलने लग जाता है तब उसमें से भाप नली के द्वारा निकलती है भाप के साथ में पानी की बूदें आती

हैं, उस पानी को शीशी में व अन्य पात्रों में एकत्र करते रहते हैं। उस हांड़ी में जितने दो इन्द्रियादि, जीव उत्पन्न हुए थे सब जल जाते हैं। उनके शरीर से निकला पसेव ही शराव है। उसको पीने से पीने वाले का माथा गरम हो जाता है। बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है तथा भय उत्पन्न एवं कामज्वर आ जाता है। क्रोध उत्पन्न होता हैं मति विवेक नष्ट हो जाती हैं। उस शराव की एक बूंद मात्र में असंख्यात सूक्ष्म जीव उत्पन्न होते ही रहते हैं तथा मरते रहते हैं। शराव को पीने से सब जीव मरण को प्राप्त होते हैं। इसलिये शराव मी त्रस जीवों का ही कलेवर है इसका भी त्याग करना ही योग्य है। कहा भी है—

मांसाहारे कुतोदया सुरापाने कुतः सत्यम् ॥

इस कहावत के अनुसार यह प्रतीत होता ही है कि जो मांस खाता है उसके हृदय में दया नहीं होती, क्योंकि मांस खाने वाला यदि दयावान होगा तो वह जीवों का प्राण घात कैसे करेगा ? नहीं करेगा। जो शराव पीता है उसकी बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है। जो कुछ बोलता है उसका उसको भान नहीं. इसलिये उसका वचन सत्य नहीं। मद्य कलेवर को रूखा वना देती है। वंश जाति कुल धर्म और कीर्ति को नष्ट कर डालती है मदिरा सर्वथा असेव्य है। हिंसा ही इसका मूल है शराव के पीने में एकपाद नाम का ऋषि प्रसिद्ध हुआ तथा यादव कुमार प्रसिद्ध हुए उनकी कथा हरिवंश पुराण से जानना चाहिये।

इसका त्यागी धूर्तिल नाम का भील शुभगति को प्राप्त हुआ।

वेश्या व्यसन

यह वेश्या सर्व वल्लभा व बाजारू नारी के नाम से प्रसिद्ध है जिनका सेवन सर्व जाति कुल वाले करते हैं। सबके धन को नष्ट करती है जब तक धन है तब तक वेश्या है। धन के नाश होते ही वेश्या अपनी नहीं होती। प्रथम तो यह नीच दुराचारी अकुलीन पुरुषों की संगत करती है। दूसरे यह मांस खाती है। तीसरे शराब पीती है, चौथे यह अपने वीर्य को खीचकर मनुष्य को नि:काम बना देती है। पांचवे निर्दयी होती है, छटवे धन को हरण कर लेती है। धनवान को भी भिखारी बना देती है। जबतक धन आता दिखाई देता है तबतक यह मनुष्य का आदर करती है धन हीन होने पर ठुकरा देती है अन्य धनिक लोगों से प्रेम करने लग जाती है। ज्यादा क्या कहें यह मनुष्य को मरवा डालती है, घोर अनादर करती है, पान खाकर उसकी पीक को सम्बन्धित व्यक्ति के ऊपर थूक देती है। वेश्या सेवन करने वालों की कुल जाति धर्म की मर्यादा भी नष्ट हो जाती है। वे लज्जा रहित हो जाते हैं। जैसे वेश्या स्वयं मांस खाती है वैसे ही उसकी संगत करते हैं उनको भी मांस खाने की प्रेरणा करती है। तथा शराब स्वयं पीती है और अपने जूठे प्यालों में अपने साथियों को प्याला पिलाती है। जब नशे में मस्त हो जाते हैं उनका सब धन वस्त्रादि ले लेती है तथा धक्का दिलवाती हुई घर से बाहर निकलवा देती है। यहां तक देखा जाता है कि यह वेश्या पाखाने में बांधकर भी डाल देती है। इसलिए

अपने धर्म की, कुल की, व अपने हित की इच्छा करने वालों को वेश्या व्यसन का त्याग कर देना ही योग्य है। वेश्या व्यसन में चारुदत्त की कथा हरिवंश पुराण में है वहां से जान लेना चाहिये।

शिकार खेलना व्यसन

शिकार अनेक प्रकार से की जाती है। तलवार, बन्दूक, रायफल, धनुषवाण व गिलोल से उड़ते व दौड़ते हुए पशु पक्षियों को निशाना लगाकर मारना व वांसुरी में आटा लगाकर तालाव व नदी समुद्र इत्यादि स्थानों में मछली पकड़ना। मगर, कच्छप इत्यादि जल जन्तुओं को पकड़कर मारना यह शिकार है। निर्दोष जंगल में विचरने वाले दीन, हीन, हिरन, खरगोश, तृण खा-कर झरनों का पानी पीने वाले तथा भय युक्त अपने जीवन को विताने वाले नोलरोझ पाढ़ बारहसिहा सावर आदि मनुष्यों के पैरों की आवाज सुनते ही भय के मारे अपने जीवन को बचाने के लिए दौड़ने लग जाते हैं। उन गरीब वन के जानवरों को दुष्ट निर्दयी शिकारी वीणा वजाकर मोहित कर तीर लाठी बन्दूक मारकर उनके शरीर का भेदन कर मार डालते हैं। कहां तो कहते थे जो वैरी है यदि वह मुख में तृण दबाकर दांत दिखाता है। तब राजा लोग उसको शरणागत जानकर उसके सब अपराधों को क्षमा कर अभय दान देते थे। कहां वे हिरन शावक जिनका मुख तृणों से भरा हुआ है फिर उन निर्दोष प्राणियों के गले पर छुरी चलाते हैं उनको धिक्कार हैं। यह आखेट महानिंद्य पाप का कारण है। और संसार में वैर को बढ़ाने वाला है नरक गति का दरवाजा खोलने वाला है। इस-लिए भव्य जीवों को शिकार कभी भी नहीं खेलना चाहिए।

स्वपर के दुःखों का कारण आखेट है उसका त्याग कर। आखेट खेलने में राज पुत्र की कथा है उसकी क्या गति हुई थी यह पद्म पुराण से जान लेना चाहिए।

चोरी व्यसन

चोरी करना महा पाप है यह साक्षात रूप से बैर द्वेष बढ़ाने का कारण है। तथा जीवनघात के समान है। संसार में यह देखा जाता है कि प्राणियों को अपने प्राणों से भी अधिक प्यारी जीविका है। जीविका को ही ग्यारहवां प्राण कहते हैं। यदि कोई चोरी कर उनका द्रव्य ले जाता है तो वे प्राणी हाय-हाय कर चिल्लाते हैं रुदन करते हैं और अपने प्राणों को भी नष्ट कर देते हैं तथा मरण को प्राप्त होते हैं। निर्दयी चोर लुटेरे जिस धन को बड़े कष्ट सहन कर तथा भूखे रहकर व दूसरों की सेवा चाकरी करके उपार्जन किया था। अथवा जिन स्थानों में सिंह, व्याघ्र, भालू, हाथी, अष्टापद आदि क्रूर हिंसक जीवों से भरे हुए घोर अटवी में प्रवेश कर कमाया था, अथवा स्त्री परिवार पुत्र माता-पिता परिजन ग्राम नगर देश का त्याग कर परदेश जाकर धन कमाया था जो प्राणों से भी प्यारा था। उस धन को यदि कोई चोरी कर ले जावे तो क्या उस धन कमाने वाले का मरण नहीं होगा? जिसने दूसरे के धन को चुराया उसने उसके धन को ही नहीं चुराया यों कहना चाहिए कि उसने उसके प्राणों को ही नष्ट कर दिया, हरण कर लिया। यदि चोरी करते हुए कहीं चोर पकड़ लिये जांय तो जनसमूह मिलकर बहुत निर्दयतापूर्वक मार लगाते हैं। उस मार के सहनन होने पर चोर हाय-हाय चिल्लाता है आक्रन्दन करता है तो भी उसके रोने को कोई भी सुनता नहीं। तत्प-

श्चात् उसको राजा के हवाले कर दिया जाता है तब राज़ कर्मचारीगण उस चोर को तीव्र वेदना उत्पन्न कराकर व एकान्त में बांधकर छड़ी बेंत आदि से चोट मारते हैं जिससे वह गिड़गिड़ाता हुआ बेहोश होकर जमीन पर गिर जाता हैं। फिर उसको काल कोठरी व नरक कोठरी में बन्द कर देते हैं। जहां खाना पानी वहीं शौच जाना पेशाब करना सोना जागना इत्यादि क्रियायें करनी पड़ती हैं। चोर धन के लोभ से धन के स्वामी को मार डालते हैं। जबरन उसके धन को छीनकर ले भागते हैं। जब वह चोरी का माल बाजारादिक में पकड़ लिया जाता हैं तब बेचने वाले खरीदने वाले दोनों ही चोर साबित किये जाते हैं। जब चोर निश्चय हो गया तब कैदखाने में बंद कर दिया जाता है व फांसी पर भी चढ़ा दिया जाता है। एक चोरी करने के कारण ही चोर के माता-पिता भाई बन्धुओं को भी राज कर्मचारी दण्ड देते हैं तथा उनके द्रव्य को छीन लेते हैं यह चोरी करना महा पाप है। चोर जनों का कोई विश्वास नहीं करता। तथा उनकी संगत भी कोई नहीं करता क्योंकि उनकी संगत करने वाले भी चोर समझे जाते हैं। संगत से सज्जन भी दुर्जन गिने जाते हैं। नीच की संगत से उच्च कुल धर्मात्मा भी नीच समझा जाता है। जैसे कलारन के हाथ में दूध से भरी हुई बोतल थी उसको देखकर लोग सोचते हैं कि यह कलारन मद्य ले जा रही है। चोर की संगत से सज्जन फंस जाता हैं दुःखों को पाता है जैसे लोह की संगत कर अग्नि घन की मार खाती है तथा अपकीर्ति को पाती है। इसलिए भव्य सज्जनों को चोरी का मन, वचन, काय, कृतकारित, अनुमोदना पूर्वक त्याग कर देना चाहिये। यह चोरी इहलोक में दुःख का वैर द्वेष का कारण है। मरण के पश्चात नरकादि

दुर्गतियों में घोर दुःख भोगने पड़ते हैं। यह अनंत संसार का बीज है। आत्मश्रद्धान से यह विमुख करता है। चोर लोग सतत भयभीत ही रहते हैं। इधर उधर छिपकर रहते हैं इस व्यसन में प्रसिद्ध ब्रह्मदत्त हुआ, तथा तापस हुआ जो मरकर नरकवासी हुआ। इसकी कथा पुराणों से जानना चाहिये। अनेक अनर्थों का कारण यह चोरी है सत्यघोष ब्राह्मण की कथा भी प्रसिद्ध है कि चोरी करने से क्या गति होती है।

परस्त्री गमन

जब कोई अपनी माता, स्त्री, बहिन, बेटी को खोटी दृष्टि से देखता है तब हम उसको बदकार कहकर उसका तिरस्कार करने को सन्मुख हो जाते हैं। बैर विरोध कर तलाक देते हैं। जब हमको अपनी माता, बहिन, स्त्री, बेटी का शील प्यारा है उसी प्रकार अन्य जनों को भी अपनी माता, बहिन, बेटी, स्त्री का शील प्यारा है। उस शील की रक्षा करने में सब ही जन ध्यान देते हैं। जब कोई किसी की मां, बहिन को कुदृष्टि से देखता है तब लोग कुपित होकर उसका सहसा तिरस्कार व मारपीट करने को सन्मुख हो जाते हैं। व्यभिचारी मनुष्यों को मार भी डालते हैं। अपमान भी करते हैं। बांधकर कामी पुरुषों के अंग उपांगों का छेदन भेदन भी कर डालते हैं। परस्त्री के साथ रमण करने वाले की कुल मर्यादा नष्ट हो जाती है। यश भी उसक नष्ट हो जाता है। परस्त्री में आसक्त मनुष्य की विवेक बुद्धि धर्म की मर्यादा वैभव सब सद्‌गुण बिलय हो जाते हैं। परस्त्री व्यसन का सेवन करने वाला सतत भयातुर ही रहा करता है। परस्त्री लम्पटी मनुष्य जिस मार्ग से गमन करता है उस मार्ग

व मौहल्ले वाले कहने लग जाते हैं कि दुष्ट व्यभिचारी इस मौहल्ले में क्यों आया। इसको सबक देना चाहिए ताकि पुनः यह इस मौहल्ले में न आवे। परस्त्री लम्पटी कामी पुरष स्त्री माता पुत्री व बहिन में विवेक नहीं करता वह तो सबको ही एक रूप से देखता है।

कामी पुरुष माता हो या वहिन हो, या पुत्री हो, या स्त्री हो वह तो सबको एक ही दृष्टि से देखता है क्योंकि कामी पुरुष की मति भ्रष्ट हो जाने से वह वहिन, वेटी, माता, स्त्री व पुत्र वधू इत्यादि का विवेक नहीं कर सकता। वह तो उनके साथ भी विषय मैथुन सेवन करने लग जाता है। और धर्म भ्रष्ट होकर पाप की पोट सिर पर वांधकर नरकादि दुर्गतियों के दुःखों को अनंत काल भोगता है। इस कलंक को दूर करने के लिए कहा गया है कि स्त्रियों के महा अपवित्र दुर्गन्धमय अशुचि स्थान जिसमें से रजरूप रक्त वहता है महा अपवित्र शरीर में सज्जन पुरुष कभी भी रत नहीं होंगे। अनंत दुखों को देने वाला है इसलिए भव्य जीवों को परस्त्री व्यसन का त्याग करना ही अपने को दुःखों व पापों से सुलझाना है। ये ही सप्त व्यसन महा पाप कहे गये हैं। सम्यक्त्व गुण का विनाश करने वाले हैं। दर्शनमोह को वढ़ाने वाले हैं। जहां व्यसन निवास करते हैं वहां पर ही अनंत संसार की कारण अनन्तानुबन्धी क्रोध मान माया लोभ ये वहीं निवास करते हैं। वैर द्वेष अधिक वढ़ाने वाले हैं जिससे जन्म जन्मान्तर में वैर की परिपाटी चला करती है। भव्य जीवों को इन व्यसन रूप पापों का त्याग अवश्य ही करना चाहिए। परस्त्री लम्पटी कडारपिंग की कथा जगत में प्रसिद्ध है तथा रावण की कथा से भी जाना जाता है कि रावण परस्त्री में लम्पट था वह सीताजी का हरण कर ले

गया था जिससे लक्ष्मण ने रावण को मार डाला था रावण मर कर नरक गया।

भय

भय सात हैं—इहलोक भय, परलोक भय, मरण भय, रोग भय, राज भय, अनरक्षक भय, आकस्मिक भय इस प्रकार भय सात हैं। इन भयों में से कोई एक भय जीवन के साथ लगा ही रहता है जब तक भय है सम्यक्त्व नहीं क्योंकि भयभीत मनुष्य कुदेव कुगुरू कुधर्म का सेवन करने लग जावेगा। भय रहित जीव निशंकित होकर कहीं भी विचर सकेगा। सम्यक्त्व का मूल अंग निशंकित है वह ठहर नहीं सकेगा।

इहलोक भय—इस क्षेत्र व ग्राम में मेरा कोई भी संरक्षक नहीं। अब मैं किसकी शरण में जाऊँ। कहां जाऊँ कहां छिपकर रहूं, किस देश में जाऊँ जिससे वहां मेरा संरक्षण हो सकेगा। इस प्रकार के और भी विचार हैं ये इहलोक भय है।

परलोक भय—हाय मैं मरण के पश्चात कहां जन्म लूंगा वहां के लोग मुझे दुःख देंगे। बांधेगे पीटेंगे पीड़ा भी मुझे देंगे। तथा हमारी इज्जत को भी नष्ट कर डालेंगे, तब मैं क्या करूँगा इस प्रकार की मन में चिन्ता रूप आर्तध्यान का होना परलोक भय है।

मरण भय—हाय अब क्या करूँ अब मेरा किस वैद्य हकीम का इलाज कराऊँ जिससे मेरा मरण न हो। किसी दुर्ग व किला व गुहा मकानादिक में छुप जाऊं जहां पर मृत्यु नहीं आती हो। इस प्रकार परिणामों में संक्लेशपना होना ही मरण भय है। हाय मेरा सुन्दर शरीर अब विनश जायेगा अब क्या करूँ। अरे वैद्यों तुम मेरी रक्षा करो जिससे मेरा मरण न हो

यह मरण भय है।

रोग भय—हाय अब क्या करूँ मेरे सर्व अंग अंग में रोग की वेदना न हो जावे यदि रोगी बन जाऊँगा तो फिर कहाँ दवाई व वैद्य मिलेगा। मेरी देखभाल कौन करेगा, कौन मेरी वैयावृत्ति करेगा। उस रोग की वेदना समय में मेरी देखभाल कौन करेगा, कौन दवाई भोजन पान देगा, कौन वैद्य आवेगा। अब किस देश ग्राम में जाऊं जिससे मेरे शरीर में रोग की वेदना न हो इस प्रकार चिन्तवन करना रोग भय है।

राज भय (अगुप्ति भय)—अरे भाई हमारे यहां पर तो किलाकोट भी नहीं है जहां पर शत्रु प्रवेश न कर सके। हाय अपने नगर ग्राम की शत्रु को सेना ने चारों तरफ से घेर लिया अब घेरा डाल दिया उससे वचना ही अत्यन्त कठिन है। किसका संदेशा दूं जिससे वच जाऊं कहां छिप जाऊं ऐसी भावना का होना अगुप्ति भय है।

अनरक्षक व अवनिपाल भय—हाय अब क्या करूँ इस ग्राम में तो चोर डांकू वहुत हैं वे मेरे सब धन को लूटकर ले जावेंगे। इस ग्राम में तो अपने परिचय का भी कोई नहीं जिसके पास रख जाऊं। यदि उन चोरों को भेद लग जावेगा तो वे हमारे जर माल को छिन लेवेंगे। यहां तो ऐसा भी कोई स्थान नहीं जहां मैं छिप जाऊँ और अपन अपवाद की रक्षा कर सकूं ऐसी भावना का होना चोर भय है। हाय रे हाय मेरे धन को लूट लेंगे और मुझे मार डालेंगे। यदि मैं गांव के मुखिया के पास जाऊँ तो वहां भी चोरों का ही सरदार है वह मेरे धन को हरण कर लेगा। चोर भय से भयभीत मनुष्य नोच पामर लोगों को सेवा करता है। अपने जर माल को रक्षा करने का प्रयत्न करता है यह चोर भय है।

इस क्षेत्र का राज बड़ा ही निर्दयी है वह मनुष्यों को मारने व दण्ड देने उनके धन का हरण करने जीविका को नष्ट करने वाला है। इस राजा से अपना पिण्ड कैसे भी छुड़ाना ही योग्य है, चोर है, दुराचारी है, मिथ्यादृष्टि है।

आकस्मिक भय—बिजली के तड़पने व अन्य कोई आवाज के आने से तथा दूसरी कोई अकस्मात घटना के घटने से होता है। इस स्थान व जंगल नगर ग्राम में तो मेरी रक्षा करने वाला कोई नहीं है। यह कैसी आवाज आ रही है। अब यहां के लोग मुझको पीड़ा देंगे मारेंगे धन छीन लेवेगें तब मैं किसके पास फर्याद करूंगा इस प्रकार की भावना का होना ही आकस्मिक भय है। ये ही सात भय हैं। इन भयों के रहने पर सम्यक्त्व में दोष उत्पन्न होता है।

ये भय सम्यग्दृष्टि के नहीं होते। जब तक हृदय में भय लगा हुआ है तब तक ही आकुलता रहती है भयों के शांत होते ही सम्यक्त्वादि गुणों में रुचि उत्पन्न होती है। सम्यग्दृष्टि ये भय नहीं करते। भय कषाय का उदय नौंवे गुणस्थान पर्यन्त है तो भी सम्यग्दृष्टि भयों को नहीं मानता। धन शरीर संयोग वियोग, जन्म, मरण, इहलोक, परलोक में सब स्थानों में कर्मों का ही फल जानता है ये भय हैं, ये सर्व कर्म जनित हैं। ऐसा जानकर निर्भय होकर विचारता है।

सम्यक्त्व के पच्चीसमल हैं—पूजामद, रूपमद, ज्ञानमद, तपमद, कुलमद, जातिमद, बलमद, एश्वर्य मद ये आठ मद हैं। आठ शंकादिक दोष— शंका कांक्षा निर्विचिकित्सा अन्य दृष्टि प्रशंसा व पाखण्डी की प्रशंसा मूढ़दृष्टि तप की प्रशंसा अवात्सल्य अप्रभावना ये सम्यक्त्व के आठ दोष हैं। जिन वचन में शंका करना तप दान पूजा करके राज्यादि पदों की इच्छा करना

यह कांक्षा मल है। दिगम्बर मुनियों की निन्दा करना, पाखण्डियों की वड़ाई करना निर्दोष मुनियों के वाहरी शरीर को मैला देख उनकी निन्दा करना तथा लौकिक जनों में प्रख्यात करना यह चिकित्सा मल है। व्रती संयमियों की निन्दा करना मिथ्यादृष्टि भेपधारियों की प्रसंसा करना, दोपों को प्रकट करना धर्मात्माओं से द्वेष करना, धर्मात्माओं को व्रतों से भ्रष्ट करना, अवगुणों का प्रकट करना, साधर्मी लोगों से वैर व द्वेप करना। जिन धर्म की निन्दा करना अन्य मिथ्यादृष्टियों के द्वारा कहे गये मिथ्या धर्म को श्रेष्ट मानना तथा धर्म पर चलने वालों की प्रशंसा करना। मिथ्यादेवों को श्रेष्ठ मानना उनकी पूजा करने वालों की प्रशंसा करना। मिथ्यादृष्टि देवों के पूजकों की प्रशंसा करना। ढोंगी मिथ्यादृष्टि पाखण्डियों के तप और तप की प्रशंशा करना। मिथ्यादृष्टि इंद्रिय भोगों के लम्पटियों के द्वारा रचे गये आगम की प्रशंसा करना पूजकों की आराधना करना ये छः अनायतन हैं। जिस आगम में हिंसा करने व यज्ञ देव देवी के निमित्त पशुओं की वलि देने में धर्म माना गया है वे कुआगम हैं। जो आरम्भ परिग्रह में लवलीन हैं जो खेती करते हैं अग्नि जलाते हैं जो सतत आरम्भादि क्रियाओं में लगे रहते हैं वे कुलिंगी कुगुरू हैं। उन गुरुओं की भक्ति करने वाले भक्तों के भक्त हैं वे सव मूढतायें हैं कुदेव कुधर्म कुगुरूओं की सेवा प्रशंसा करना दान सम्मान करना मूढ़ता है।

इस प्रकार ये पच्चीस शंकादिक सम्यक्त्व के मलों का कथन संक्षेप से किया विस्तार पूर्वक अष्टपाहुड़ रत्नकरण्ड श्रावकाचार से जानना चाहिये।

अर्हन्त सिद्ध आचार्य उपाध्याय मुनि ये सव पंच गुरु कहलाते

हैं। इन पंच गुरुओं का चिन्तवन करना पूजा करना सेवा वैया-वृत्ति करना। उनके द्वारा बताये हुए मार्ग में श्रद्धान पूर्वक सन्मार्ग में चलना यह पंचगुरु भक्ति है। उनके गुणों का बार-बार चिन्तवन करना। पूजा, दान, मान करना यह पंचगुरु भक्ति है।

संसार के दु:खों से भयभीत जिनका चित्त हो गया है जिन्होंने संसार के दु:खों को जानकर त्याग कर दिया। जो संसार से उदासीन हैं तथा शरीर की होने वाली सब अवस्थाओं को जान लिया है वे इस शरीर से ममत्व भाव का त्याग करते हैं। यह शरीर मलों का पुंज है तथा मलों से ही बना हुआ है। रोगों का एक मात्र घर है। शरीर के सम्बन्ध से ही रोग शोक संयोग वियोग रूप दु:ख है ऐसा जानकर निर्ममत्व है। पंचेन्द्रियों के भोग उपभोग सब ही भोगने में व देखने में अच्छे दिखाई देते हैं। भोगने के पश्चात् महावेदना को उत्पन्न करते हैं। मनुष्य स्त्री के साथ मैथुन सेवन करता है कि जिससे कामदाह शान्त हो जावेगी परन्तु सेवन के पश्चात् कामदाह और भी अधिक बढ़ जाती है। स्त्री के साथ विषय सेवन करता है उस समय जब वीर्य का पतन होने तक आनन्द मानता है वीर्य पतन के पश्चात् निर्जीव के समान हो जाता है। तत्पश्चात् कुछ समय बाद कामवेदना पुन: दाह उत्पन्न करने लग जाती है इस प्रकार जानकर पंचेन्द्रियों के भोगों से विरक्त होता है। तथा अनन्त दु:खों का व अनर्थों की खान ये पंचेन्द्रियों के ही भोग उपयोग है ऐसा जानकर जिनका चित्त वैराग्यमय है वह सम्यग्दृष्टि का लक्षण है।

संसार अवस्था में विचरण करते हुए को अपने शुभ अशुभ जैसे परिणाम होते हैं तदनुसार ही कर्मों का आस्रव और बंध

होता है। जब उनका अनुभाग बंध मर्यादा पूर्ण होने पर कर्म अपना अतिशय दिखाते हैं जिससे इष्टवियोग होता हुआ देखा जाता है। व्यापार में हानि, घर में कलह, पुत्र स्त्री भाई बन्धुओं में विग्रह, झगड़ा, कलह उत्पन्न होते हुए देखे जाते हैं। जिसे वैर, द्वेष और राग करते हैं, तथा नवीन-नवीन कर्मों का आस्रव बंध होता रहता है। जिससे नरकों में जाकर जीवों को दुःखों का अनुभव करना पड़ता है। वहाँ के दुःखों से भी कालान्तर में नरक आयु पूर्ण होने पर जीव तिर्यञ्च योनि में उत्पन्न हो करके शीत की वेदना गर्मी की वेदना व भूख प्यास के लगने पर चारा पानी नहीं मिलने पर वेदना तथा अपने से बलवानों द्वारा पकड़कर नाक-कान छेदने व शरीर पर अधिक बोझा लादने रूप अनेक प्रकार के दुःखों का अनुभव जीव तूने किया। तथा अपने से बलवानों के द्वारा शरीर को फाड़चीर कर खाना, दांतों व वज्र के समान कठोर चंचू से पीसना, दबाना टुकड़े करना व दांतों से मांस निकालकर खाने रूप महावेदना होती है वह भी हे जीव तूने भोगी। वह वेदना असह्य पराश्रित होकर भोगी। तथा अकाम निर्जरा भी की जिससे देव गति को प्राप्त हुआ।

देवगति में भी अपने से अधिक पुण्यवानों की भोग उपभोग की वस्तुओं को देख खेद उत्पन्न करता है कि अरे मुझको इनके समान सुन्दर देवांगनायें नहीं मिली। हाय मैंने इतना हीन कर्म किया, कि जिससे मैं वाहन जाति का देव हुआ जिससे ये बड़े ऋद्धि के धारक देव, देवियां मेरे ऊपर बैठकर चलते हैं मुझको इनका भार वहन करना पड़ता है। कभी विचार करता है कि हाय मुझे इन्द्र की सभा में भी जाने का अधिकार नहीं। हाय मुझे बाजे बजाते हुए आगे-आगे इन्द्रादि देवों के चलना पड़ता है।

ये सब महा ऋद्धि के धारक हैं, मुझमें कोई प्रकार की अणिमादि ऋद्धियाँ नहीं। अन्य देवों के वैभव को देख-देख झूर-झूर आर्तध्यान करता है। तथा अन्त समय जब छह महिना शेष आयु रहजाती है तब यह आर्तध्यान होता है कि हाय मेरी देवांगना हाय मेरा वैभव देवगति अब मुझ से भिन्न होगी, हाय मेरा मरण होगा। इस प्रकार विचार करता है कि शरीर खिर जाता है जिससे एकेन्द्रिय स्थावरों में उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार देवगति में भी जीवों को मानसिक दुःख होता है।

मनुष्य गति में सबसे बड़ा दुःख तो जन्म से पूर्व गर्भ में अधोमुख लटकते रहने का है। और भी माता के शीतउष्ण भोज करने पर होता है। यदि माता चरपरा खाते तो अत्यन्त संताप उत्पन्न होय। जब जन्म होय। उस काल में माता के गर्भ से या योनी में से निकलते समय जो दुःख होता है उस दुःख का तो अनुभव जन्म लेने वाला प्राणी ही जान सकता है या केवली भगवान ही जान सकते हैं। जिस प्रकार सुनार जंती में से सुवर्ण का तार खींचता है बस उसी प्रकार यह जीव गर्भ से बाहर निकलता है। तथा गर्भ से बाहर निकलते ही भूख की अत्यन्त वेदना होने से रुदन मचाता है। जब यौवन अवस्था को प्राप्त हो जाने के पूर्व बाल अवस्था में मुख से कुछ भी कह नहीं सकता और वेदनीय कर्म का तीव्र उदय आया पेट, पीठ, पांव व अन्य स्थानों में वेदना होने से दुःख होता है। यौवन अवस्था में प्रथम तो शादी नहीं हुई यह दुःख दूसरे शादी होकर मर गई तो और दुःख। पुत्र वियोग दुःख स्त्री कर्कशा मिलने पुत्र व्यभिचारी होने व पुत्र होता नहीं तो दुःख, यदि होकर मर गया तो और भी दुःख। शरीर में रोग होने व धन के न होने एवं धन होकर नाश होने पर दुःख ही दुःख हैं।

जिन जीवों के सतत पुण्य का उदय है वे भी दुःखी होते हुए दिखाई देते हैं। इसके पश्चात वृद्धावस्था के दुःख हैं कि जहां पर श्वास भी शुद्ध नहीं आती। जहां पर इन्द्रियां अपने-अपने कार्य करने में शिथिल हो जाती है। वृद्धावस्था आने पर तृष्णा अधिक बढ़ जाती है। जब मरण काल उपस्थित होता है तब हाय पुत्र, हाय बेटी बहू मेरी स्त्री आदि ये आ सब मेरा वियोग हुआ इस प्रकार आर्तध्यान कर मरण करता हैं। जिससे तिर्यञ्चादि गतियों में जा उत्पन्न होता है। ऐसी संसार की अवस्थाओं को जानकर संसार से विरक्त होता है। यह भी जान लिया है कि जिनको वेदनायें हैं वे सब शरीर के संयोग सम्बन्ध से ही है। जितने पंचेन्द्रियां के विषय हैं वे ही भोग और उपभोग रूप हैं। वे भोग मेरे को सदा आकुलता उत्पन्न करने हैं। इस प्रकार सम्यग्दृष्टि जीव संसार शरीर भोगों से विरक्त होता हुआ पाप भीरू होता है।

यह सम्यक्त्व मोक्ष महल की जड़ है और पुण्यानुबंधी पुण्य रूप सुमार्ग है—हे भव्यात्मन् देखो यह सम्यक्त्व ही आत्मा की शुद्धि करने वाला है। प्रथम निश्चय सम्यक्त्व (वितराग सम्यक्त्व) दूसरा व्यवहार सम्यक्त्व। निश्चय वीतराग सम्यक्त्व वह है जो आत्मिक गुणों में परम अवगाढ़ श्रद्धान का होना। यथा मेरा मरण ही नहीं तब भय किसका और मेरे स्वरूप में व्याधि नहीं तो वेदना किसके। मेरे आत्मा में बाल अवस्था यौवन अवस्था वृद्धावस्था भी नहीं है ये अवस्थायें सब पुद्गल कर्म नो कर्म की ही हैं तथा कर्मां के उदय से प्राप्त हैं इसलिये मेरे से भिन्न हैं। इस प्रकार जानकर जो अंतरंग आत्म रूचि उत्पन्न होती है। जिसमें शंका कांक्षा इत्यादि दोषों का भी अभाव पाया जाता है। तथा संसार शरीर भोगों से भी अरुची
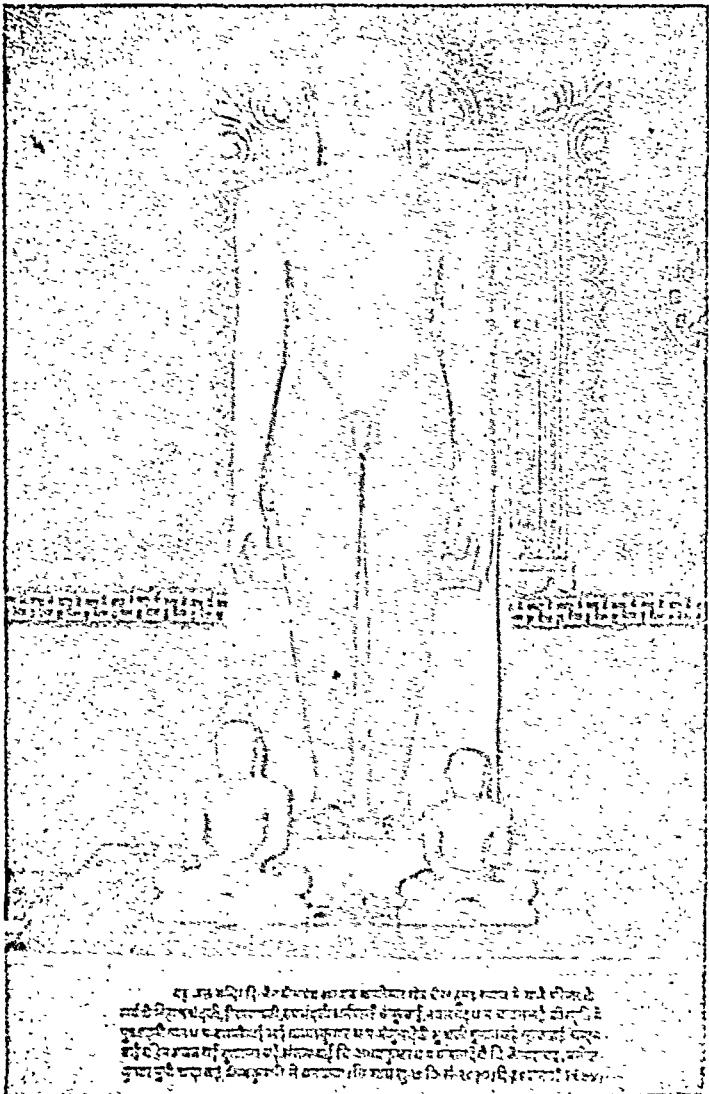
श्री १००८ भगवान महावीर जल मन्दिर, सलूम्बर

उत्पन्न होती है। जब अरुचि उत्पन्न हो तब पंचेन्द्रियों के भोग व शरीर को पुष्ट करने वाले अनेक साधन सुलभता से प्राप्त होने पर भी उनकी तरफ दृष्टि नहीं जाती। तभी वह श्रद्धान और आत्म समता (क्षमता) उत्पन्न होय है यह निश्चय वितराग सम्यक्त्व का संक्षेप कथन है। विशेष आगम से जान लेना चाहिए।

व्यवहार तथा सराग सम्यक्त्व छह द्रव्य पंचास्तिकाय निर्दोष जीवादि नव पथार्थ वे पदार्थ तत्वानुभूत हैं अथवा द्रव्य स्वरूप हैं सच्चे देव और सच्चे देव के द्वारा कहा गया आगम और आगम के अनुसार चलने वाले आचार्य उपाध्याय और साधु हैं उनके गुणों में अनुराग व श्रद्धान का होना यह सराग व्यवहार सम्यवत्व है। सम्यक्त्व पांच, अतिचार आठ, मद आठ, शंकादिक मल तीन, मूढ़ता छह, अनायतनों से रहित होता है यह व्यवहार सम्यक्त्व है। यह व्यवहार समयक्त्व भी पुण्य रूप ही है। और मोक्ष रूपी वृक्ष की जड़ ही है।

जिस प्रकार जड़ के बिना वृक्ष की स्थिति व वृद्धि नहीं हो सकती। शाखा पत्ते, फूल, फलों की भी प्राप्ति नहीं हो सकती, उसी प्रकार सम्यक्त्व के अभाव में ज्ञान, चारित्र, तप आदि गुण भी नहीं और मोक्ष रूप फल की भी प्राप्ति नहीं हो सकती। संसारी जीव संसार के बंधन से मुक्त भी हो सकता है। सर्व गुणों में सम्यक्त्व गुण ही प्रधान गुण है। सम्यक्त्व के होने पर ज्ञान में समीचीनता प्राप्त होती है। प्रथम व्यवहार सम्यक्त्व उपार्जन करना चाहिए तत्पश्चात वीतराग निश्चय सम्यक्त्व। इन दोनों सम्यक्त्वों में कारण कार्य का सम्वन्ध है। व्यवहार सम्यक्त्व कारण है निश्चय सम्यक्त्व कार्य रूप है। हे भव्य जब सम्यक्त्व हो जावेगा तब पंचपरावर्तन रूप संसार भ्रमण का अन्त होगा ऐसा तू निश्चय जान।

विशेषार्थ—आत्मा अनन्त गुणों का पिण्ड है उन गुणों में सम्यक्त्व गुण एक प्रधान गुण है। वह आत्मा को आत्मा के गुणों में श्रद्धा उत्पन्न करता है। तथा असत्य अधर्म की रुचि को नष्ट करता है। और अपने आत्मिक गुणों में अभिरूचि करता है। अन्य सब पदार्थों को निज भाव से भिन्न समझकर अपनाता नहीं यही सम्यग्दर्शन है। आत्मा के सब गुणों में श्रेष्ठ गुण सब रत्नों में श्रेष्ठ रत्न यह सम्यक्त्व ही है। सम्यक्त्व चारगतिवाले सैनी प्रर्याप्तक पंचेन्द्रिय भव्य जीव को ही प्राप्त होता है। दोनों सम्यक्त्वों में अंतरंग हेतु समान ही है दर्शन मोह की मिथ्यात्व, सम्यक्मिथ्यात्व. सम्यक्प्रकृति और चारित्र मोह की अनन्तानुबन्धी कषाय चार इन सात के उपशम होने पर उपशम सम्यक्त्व क्षयोपशम होने पर क्षयोपशम सम्यक्त्व क्षय होने पर क्षायक सम्यक्त्व आत्मा से प्रकट होता है। जिस प्रकार निर्मली के डालने पर पानी में मिली हुई माटी नीचे बैठ जाती है पानी स्वच्छ हो जाता है। इसी आत्मा मे अनादि काल के लगे हुए मिथ्यात्व सम्यक्मिथ्यात्व सम्यक्प्रकृति तथा अनन्तानुबन्धी चारों कषायों का नीचे दब जाना यह उपशम कहा। जब पानी को दूसरे बर्तन में परिवर्तन कर दिया तब पानी अत्यन्त निर्मल हुआ यह क्षायक है। तथा सर्व घातिया ६ प्रकृतियों के उदयाभावी क्षय सद्वस्था रूप उपशम तथा सम्यक् प्रकृति उदय में आने पर क्षयोपशमिक सम्यक्त्व है उस का स्वरूप कहा है। बाह्य साधन अनेक प्रकार के हैं देवबिंब दर्शन गुरूओं का उपदेश देव ऋद्धि दर्शन, जाति स्मरण, वेदना का अनुभव समवसरण का दर्शन अरहंत का उपदेश इत्यादि बाह्य साधन हैं। मुनिश्वरों पर घोर उपसर्ग देखकर आत्म श्रद्धान का होना ही सम्यक्त्व है। तथा उनके गुणों में अनुराग का होना ही आत्म श्रद्धान होता है।

निःशंकित अंग

अठारह दोष रहित हितोपदेशी सर्वज्ञ वीतराग इन गुणों से युक्त सच्चे आप्त की अराधना भक्ति करना तथा आप्त के वताए हुए आगम का अनुशरण करना व उनके गुणों की भक्ति ध्यान करना तथा उसी प्रकार निर्ग्रन्थ आरम्भ, परिग्रह से रहित दिगम्बर गुरुओं के चरणों में लवलीन होना यह ही सच्चा मोक्षमार्ग है। इससे विपरीत अन्यलिंगों से मोक्षमार्ग नहीं, ऐसा दृढ़ श्रद्धान होना ही निशंकित अंग है। अन्य लिंगों से भी मोक्ष होगा या दिगम्बर लिंग से ही होगा ऐसी शका न करते हुए यही मोक्ष मार्ग है ऐसा अटल श्रद्धान का होना ही निशंकित है। निर्ग्रंथ लिंग ही मोक्षमार्ग है अन्य लिंग मोक्ष के मार्ग नहीं शेष सब उन्मार्ग हैं उनसे कभी भी पूर्व में मोक्ष जीवों को नहीं हुआ न हो रहा है न भविष्य में ही होगा। जिस प्रकार तलवार की धार पर रखा गया पानी अचल स्थिर रहता है उसी तरह निशंकित सम्यक्त्व का अंग है। सर्वज्ञ वीतराग के द्वारा जो द्रव्यों व पदार्थों व तत्वों का जैसा स्वरूप वताया है वैसा का वैसा ही अचल श्रद्धान करना यह निशंकित अंग है। यह अंग शुभ भावनाओं से ही प्राप्त होता है। निशंकित अंग में प्रसिद्ध लन्जितांग नाम का राजकुमार प्रसिद्ध हुआ।

निःकांक्षित अंग

जिनेन्द्र भगवान के पंचकल्याण पूजा प्रतिष्ठा तथा मुनी-

श्वरों के लिये दिये गये दान व व्रत तप के फल की इच्छा करना कि मुझे इसके बदले चक्रवती व नारायण प्रति नारायण वलभद्र व देवेन्द्रपद की प्राप्ति हो। ऐसी इच्छा करना यह निदन बंध है और वैर तथा अनन्त संसार भ्रमण का कारण है एसी इच्छा सम्यग्दृष्टि नहीं करते यह सम्यक्त्व का दूसरा निकांक्षित अंग है। सम्यग्दृष्टि विचार करता है एक सम्यक्त्व के प्रभाव से त्रिलोक्य पूजसिद्ध गति व मोक्ष सुख जीवों को मिलता है। तब ये संसार के सुख व पद तो आप ही मिल जावेंगे। जिस प्रकार किसान खेती करते पलाल का लक्ष्य नहीं रखता। वह तो धान्यका ही लक्ष्य रखता है धान्य के साथ पलाल तो अपने आप ही आ जायेगा। जिस दान पूजा व्रतो का फल अविनाशी, अनन्त, अनुपम, अतिइन्द्रिय, विषयातीत सुख मिल सकता है तब इन्द्रपद, चक्रवर्तीपद इत्यादि अन्य पद सब ही क्षण भंगुर हैं। तथा पंचेन्द्रियों के भोग उपभोग भी क्षण भंगुर सुखाभाष हैं। इस प्रकार विचार कर आगामी भोगोपभोगों की व उच्चपदों की इच्छा नहीं करते यह निःकाञ्छा सम्यग्यदृष्टि का दूसरा अंग है। इस अंग में प्रसिद्ध अनन्तमती हुई है।

निर्विचकित्सा अंग

जो योगी यति तपस्वी हैं जिनके शरीर पर धूल आकर जम गई है तथा पसीना निकलने से दुर्गन्ध आने लागी है। उनके शरीर को दुर्गन्धमय मलिन देखकर घृणा नहीं करना। उनके गुणों में प्रेम करना, सेवा, वैयावृत्ति करना तथा उनके गुणों को विकास करना वह निर्विचिकित्सा अंग है जहां पर दिगम्वर वीतराग मुद्रा के धारक मुनिराज विराजमान हैं तथा जिन्होंने

अपने शरीर की दशा को जान ममत्व का त्यागकर अपने आत्म स्वरूप का ही अवलम्बन प्राप्त कर लिया है। तथा शरीर की होने वाली चार अवस्थाओं को जान लिया है। तथा शरीर सप्त कुधातुओं से निर्माण हुआ है सदा इसमें से मल नव द्वारों से बहते ही रहते हैं। यह गात्र ही मूल में दुःखों का कारण है। इसके ही साथ नाना प्रकार की वेदना उत्पन्न होकर जीवों को हमेशा दुःख दिया करती है। यदि इसको समुद्र के भरे हुये सर्व पानी से पखारा जावे तो भी यह निर्मल पवित्र नहीं हो सकता। यदि तीनों लोक की सब औषधियों को घोट पीसकर शरीर को खिला दिया जावे तो भी वह निरोग नहीं हो सकता। और तीनों लोक का नाज खिला दिया जावे तो साश्वत नहीं रह सकेगा। इस प्रकार जानकर मुनिराज शरीर से राग हटा कर आत्मा के ऊपर लगी हुई कालिमा को दूर करने में प्रयत्न शील हैं उनके शरीर मात्र देख घृणा नहीं करते उनके गुणों में अनुराग करना निर्विचिकित्सा अंग है।

अमूढ़ दृष्टि अंग

कुमार्ग में चलने वाले मिथ्यात्व में रत और मिथ्या धर्म के धारक व कुआगम के अनुसरण करने वाले तथा मिथ्या तप के तपने वाले कुलिंगियों की विनय नहीं करना सेवा दान वैया-वृत्ति भी नहीं करना। तथा कुतप के धारकों की प्रशंसा नहीं करना यह अमूढ़ दृष्टि अंग है। यह भव्यजीवों का भूषण है। जो मार्ग दुःखों का कारण तथा अनन्त संसार चक्र को प्रवाह रूपसे चलाने वाला ऐसे मिथ्यादर्शनादि के धारक जीवों की भय से या लोभ से अथवा पुत्र धन की प्राप्ति की इच्छा से नहीं स्तवन करना। मन, वचन, काय से उनको उत्कृष्ट मान आदर

सत्कार विनयादि नहीं करना। तथा अपने धारण किये हुए व धार्मिक के धारण किये हुए व्रतशील संयम उपवासादि की निन्दा नहीं करना। सम्यक्त्वादि महागुणों को निरादर निरुत्सुक रूप से आलम्बन नहीं करना वह अमूढ़ दृष्टि अंग है। मैंने जो भगवान सर्वज्ञ प्रणीत मार्ग को स्वीकार किया है इस ही मार्ग को तीर्थङ्कर चक्रवर्ती आदि अनेक महापुरुषों ने भी धारण किया था। ये सम्यक्त्व संयममय नियम ही जीवों के परम उपकारी हैं। यह जिनेन्द्र भगवान का उपदेशामार्ग ही सच्चामार्ग है अन्य छद्मस्थों का कहा हुआ मार्ग व धर्म मिथ्यामार्ग व अकल्याणकारी है।

मिथ्या धर्म जिस धर्म में हिंसादि पापों को सहमत कर पोषण किया गया है तथा देवी देवताओं की सेवा में बकरी, मेंढा, मुर्गा आदि की वलि चढ़ाना व चढ़वाने में धर्म मानना तथा यज्ञ में पशुओं को जीते जी होम देना और कहना कि ये सब पशु ब्रह्मा ने यज्ञ के लिये ही बनाये हैं। तथा वे होमे हुए जीव सब स्वर्ग बैंकुण्ठ में चले जाते हैं। तथा पित्रों के निमित्त ब्राह्मणों को बकरा मेष मीन आदि जलचर, थलचर व नभचरों का मांस अर्पण करना और कहना कि इस दान के प्रभाव से वे पित्र परम सुख को प्राप्त होंगे। तथा गया प्रयाग राजकुम्भ आदि स्थानों में जाकर बालू के ढेर लगाकार पिण्डदान देना स्नान करने में धर्म मानना और उससे अपने पूर्वजों की मुक्ति मानना। गंगा, नर्वदा गोदावरी आदि नदियों में मृतक मनुष्य के जले हुए हड्डियों को क्षेपण कर प्रसन्न होकर नाचना गाना और कहना कि हमारे पूर्वज अविनाशी सुख को प्राप्त हो गये। तथा ओंकारेश्वर के पर्वत से गिरकर मरने में धर्म मानने वाले मूढ़ दृष्टि हैं। गंगासागर, गंगा, नर्वदा, गोदावरी आदि नदियों

में स्नान कर धर्म मानना। जटा बढ़ाने तथा पंचाग्नि तप करने व गांजा, भांग, धतूरा, मद्य, पररमणी, रमण, व रास लीला करने में धर्म मानना यह कहना कि यह सब भगवान के भी थी यह धर्म है। इस प्रकार कहे गये पाखण्डियों के द्वारा जो धर्म हैं वे सब मिथ्या धर्म व मार्ग हैं। इनको आचरण करने वालों की सम्यग्दृष्टि कभी प्रशंसा न करे यह अमूढ़ दृष्टि अंग है। जिन आप्त के द्वारा कहा हुआ धर्म उसके धारक साधुओं की विनय व प्रशंसा करना ही धर्म है। वह धर्म है जहां जीवों को सब प्रकार से अभय दान दिया जाता हो। यही धर्म सम्यग्दृष्टि का आभूषण है।

उपगूहन अंग

जब कोई भव्यात्मा सम्यक्त्व व देश संयम व सकल संयम से प्रमाद व मोह से अथवा पंचेन्द्रिय के विषयों में अतिगृद्ध व लालसा बढ़जाने के कारण व कषायों की तीव्रता साधन के अभाव होने के कारण मिलने पर चलायमान हो रहा है तथा अज्ञानता के कारण ग्रहण किये हुए व्रत, नियमों से चलायमान हो रहा है उसके विद्वानों के द्वारा दोषों को दबा देना यह उपगूहन अंग है शरीररिक परिस्थिति खराब होने से तथा अन्य कारणों के मिलने से जो धर्म व सन्मार्ग से च्युत हो रहा हो उसके दोषों को ढक देना यह उपगूहन अंग है। जो अज्ञानता के कारण व मिथ्यादृष्टियों के द्वारा जिसकी निन्दा की जा सकती है तथा प्रमाद व इन्द्रिय विषयासक्त होने के कारण सम्यक्त्व संयम में दोष उत्पन्न हो गये हैं, जिससे जिन धर्म व सम्यक्त्व व संयम में कलंक लग जाने पर उसके सब दोषों को ढक देना यह उपगूहन अंग है। इस प्रकार सर्वज्ञ का उपदेश है।

विशेष—लौकिकजनों को चाहिए अपनी अज्ञानता से तथा प्रमाद कषायों की तीव्रता के होने पर संयमासंयम तथा संयम सम्यक्त्व से कोई चलायमान होता हुआ दिखाई देवे तो उसको दानमान धैर्यता बंधाकर उन सब दोषों को छिपा देना यह सम्यक्त्व का उपगूहन अंग है ऐसा विद्वानों के द्वारा कहा गया है।

स्थिति करण अंग

जो प्रमाद के कारण व जीविका के अभाव में रोग के हो जाने पर अथवा पंचेन्द्रियों के विषयों में लम्पटता अधिक होने के कारण सम्यक्त्व तथा देश व सकल संयम से चलायमान हो रहा हो उस जीव को उसकी आजीविका लगाकर धैर्य बंधाकर धर्मदेशना देकर तथा संसार के दुःखों का उपदेश देकरा पुनः सम्यक्त्व व संयम में दृढ़ कर देना यह विद्वानों के द्वारा किया गया प्रतिस्थापना अंग है। शरीर में रोग हो जाने से, निन्दा होने से, भय से, कर्मों के उदय से, जीविका रोजगार न चलने के कारणों के मिलने से जो भव्य धर्म से चलायमान हो रहा है उसको विद्वान लोग धैर्य बंधाकर कि आपके हम हैं। हम आपकी जीविका का इन्तजाम करेंगे रोग की औषध करेंगे आप अपने व्रतों का धैर्यतापूर्वक पालन करो ? यह सम्यक्त्व व चारित्र ही इन पूर्व कृत दुष्कर्मों के विपाक को भी क्षय करने वाला है। इससे ही जीव देवगति के सुखों को पाते हैं तथा इससे ही मुक्ति रमा को वरते हैं। अथवा धन, बल आदि के द्वारा संम्वर्धन कर देना ही विद्वानों के द्वारा प्रत्यवस्थापना सम्यक्त्व का अंग है।

वात्सल्य अंग

अपने साधर्मी व धर्म के भारकों के साथ विद्रोह कलह नहीं करता है न वैर भाव करता है । साधर्मी भाइयों के प्रति वैर भाव अभिमान त्यागकर उनसे प्रेम करता है। इनके गुणों में अनुराग कर प्रति उपकार की भावना नहीं रखता है बिना प्रयोजन ही उनसे प्रेम करता है जैसे गाय और बछड़ा की प्रीति यह वात्सल्य अंग है यही प्रशंसा करने योग्य है।

जिनको सम्यक्त्वादि महान गुण प्राप्त हो चुके हैं तथा जो चारित्र धर्म पालन करने में तत्पर हैं। उनके गुणों में प्रीति होना, उनके वात्सल्यादि गुणों को अपने हृदय में उतारना, बार बार गुणों का चिन्तवन करना, गुणी जनों से प्रीति करना तथा निःस्वार्थ वृत्ति से उनके ऊपर आये हुए परीषह व उपसर्गों को अपनी शक्ति के अनुसार दूर करना, व प्रति-उपकार की भावना का न होना यह वात्सल्य अंग है। धर्म को धारण कर राग द्वेष भावों का त्याग करना, उन श्रावक व साधुजनों की सेवा वैयावृत्ति कर उनके शरीर में हुए रोगादि मल परीषहों को दूर करना, धर्मात्माओं को धर्म में उत्साहित करना व उत्साहित होना, अपने धर्म से च्युत करने वाले राग द्वेष असंयम भावों को तथा हिंसा, झूठ, चोरी, अब्रह्म, व्यसनों का त्याग करना यह स्वात्म वात्सल्य है। जिन्होंने इन धर्मों को धारण किया है उन धर्मात्माओं को धर्म की रक्षा करने के हेतु यदि अपना जीवन भी जावे तो श्रेष्ठ है। जिस प्रकार गाय के

सामने यदि सिंह आकर चाहे कि मैं गाय के बच्चे को गाय के सामने पकड़ कर खा लूं। उस समय सिंह को सामने आता देख गाय अपने बच्चे को अपनी छाती के नीचे करके उस सिंह को मारने को सन्मुख होती है। वह यह कदापि विचार नहीं करती कि यह सिंह मुझे ही खा जावेगा वह तो सिंह के सन्मुख खड़ी होकर सिंह को ही मारने को हुँकार कर दौड़ती है और बच्चे की रक्षा करती है। उसी प्रकार साधर्मी भाई के प्रति उपकार की भावना न करते हुए आचरण करना, रक्षा करना, यह वात्सल्य अंग सम्यक्त्व का है।

प्रभावना अंग

तीर्थङ्कर का विम्ब निर्माण कराकर उसकी पंच कल्याण प्रतिष्ठा उत्सव करना तथा अष्टान्हिका पूजा, तीन लोक पूजा, इन्द्रध्वजा पूजा जलयात्रा और रथोत्सवादि कर जिन धर्म की कीर्ति व गुणों का प्रकाश करना अज्ञानता रूपी अंधकार फैला हुआ है उसको दान तप उपवास कर दूर करना यह प्रभावना अंग है। तप और तपस्वियों के महात्म्य को मिथ्यादृष्टियों को दिखाना जिससे वे भी इस बात को स्वीकार करें और कहें कि ये जैन साधु या गृहस्थ धन्य हैं क्योंकि अमुक ने २० उपवास किये। धन्य हैं आज भी इस पंचम काल में ऐसे साधु व गृहस्थ बने हुए हैं। इस प्रकार यह सम्यक्त्व का आठवांग प्रभावना पूर्ण हुआ।

दर्शन विशुद्धि का माहात्म्य

इस दर्शन विशुद्धि भावना को जो भव्य प्राप्त कर उसमें लवलीन हो रहे हैं उन जीवों को देवेन्द्र पद, चक्रवर्ती पद, वासुदेव पद वलभद्रपद और कामदेव पद तथा तीर्थंकरादि पदों को प्रदान करती हैं। जिनको दर्शन विशुद्धि प्राप्त हो गई उसके सब दुःखों का अन्त आ गया ऐसा समझना चाहिए।

जब तक इस संसारी प्राणी को सम्यक्त्व की प्राप्ति नहीं होती तभी तक पंचपरावर्तन रूप संसार रूपी समुद्र में मग्न रहता है। तभी तक नरकगति तिर्यञ्चगति देव दुर्गति तथा मष्नुय गतियों में जन्म, जरा, मरण, रोग, शोक आदि तथा इष्ट वियोग अनिष्ट संयोग के दुःखों को प्राप्त होता है। दुःखों का मूल कारण दर्शन मोह अथवा मिथ्यात्व ही है इससे भिन्न दूसरा कोई नहीं। जब सम्यक्त्व प्राप्त हुआ तब ज्ञान भी सम्यग्ज्ञान हुआ जिसके प्राप्त होते ही संसार भ्रमण का अंत आ गया ऐसा समझना चाहिये।

सम्यग्दर्शन जिनका विशुद्ध हुआ है वे जीव निश्चय कर वृद्धावस्था रूपी शोक से रहित हो जाते हैं। तथा इष्टवियोग अनिष्ट संयोग के होने रूप शोक से रहित अवस्था विशेष को प्राप्त होते हैं। वे ही अविनाशी हीनाधीकता से रहित मोक्ष सुख को प्राप्त होते हैं। जिस मोक्ष में वलवान अथवा बाल अवस्था यौवन और वुढ़ापा भी नहीं है। जहां पर क्षायक

सम्यग्दर्शन और ज्ञान के वैभव को पाता है। दर्शन मोह तथा चारित्र मोह इनको अध्यवसान भी कहते हैं इनका अभाव होते ही दर्शनावर्ण, ज्ञानावर्ण और अंतराय के अभाव हो जोने से अमल अथवा निर्मल है। जिस मोक्ष में न पुण्य है न पाप रूप कोई वस्तु है। वहां पर पुण्य पाप रूप कर्मों की उदय उदीरणा सत्व भी नहीं है। वहां पर क्षुधा प्यास जरा इत्यादि अठारह दोष भी नहीं हैं। उपशम क्षयोपशम क्षायक औदायिक भावों से रहित होने से अचल है। जिनके ज्ञानादि गुणों का अंतनहीं होने से वे अंतातीत हैं। अनंत हैं। उस मोक्ष में सब सिद्धों का एक ज्ञान ही भूपण है।

सम्यग्दृष्टि जीव जन्म, मरण, बुढ़ापा, रोग, शोक, आकुलता भूख, प्यास, राग-द्वेष, ईर्षा, मत्सर, भय, मोह वेदना, रति, अरति निद्रादि दोषों से रहित ऐसा अव्याबाध सुख को प्राप्त होते हैं। सम्यग्दृष्टि जीव ही अनन्त दर्शन ज्ञान सुख वीर्य को प्राप्त होते हैं। पंच परावर्तनरूप तथा चारगति रून संसार के जन्म मरण से रहित होने से वे अचल अडोल कहलाते हैं। उपमा रहित सुख का आस्वादन करने से अनुपम हैं। सम्यग्ज्ञानी जिस प्रकार छैनी से किया गया छिद्र जैसा का तैसा ही रह जाता है वैसे ही मोक्ष में जीवों का सुख घटता बढ़ता नहीं समान ही रहता है। ये सब विशेषणों को सम्यग्दृष्टि ज्ञानी प्राप्त होता है। यह सब महिमा दर्शन विशुद्धि भावना की है।

आगे कहते हैं कि सम्यग्दृष्टि जीव किन-किन स्थानों में उत्पन्न नहीं होता—

सम्यक्त्व सम्पन्न भव्य प्राणी सब प्रकार की स्त्रियों में नहीं उत्पन्न होता। न व्यन्तर ज्योतिष भवन वासी देवों में ही उत्पन्न होता है। संड और दरिद्री व म्लेक्ष नहीं होता। अंग

उपांग हीन भी नहीं होता। बहरा, गूंगा, अंधा और हीन कुलों में उत्पन्न नहीं होता है। स्थावरों में दो, तीन, चार इंद्रियों में तथा असेनी पंचेंद्रिय प्राणियों में उत्पन्न नहीं होता है। तथा नारकी और पशु पर्यायों में निश्चय से उत्पन्न नहीं होता। सम्यक्त्व सहित जीव तो ऋद्धि के धारक देव होते हैं तथा मोक्ष को प्राप्त करते हैं।

सम्यग्दृष्टि जीव मरण के पश्चात सुकुल व सुजाति में उत्पन्न होता है वहां वह सुशिक्षा तथा विनयादि सुगुण और दान पूजादि सुलक्षणों को पाता है। जहाँ पर सज्जन धर्मात्मा जीव निवास करते हैं ऐसे सुदेश और साधु सज्जन पुरुषों की संगत रूप सुवैभव को चक्रवर्ती आदि का वैभव प्राप्त होता है। वह सम्यग्दृष्टि जीव ही सुचारित्र व सुशीलों को प्राप्त होता है। अपने को सुउपदेश व सलाह देने वाले मित्रों का मिलना, निरोग शरीर का प्राप्त होना, तथा माता, पिता, भाई, रिश्तेदार स्त्री, पुत्र आज्ञाकारी मिलना, धर्मात्मा मिलना, तथा दीर्घ आयु और उच्चगोत्रों में उत्पन्न होना, ये सब सम्यक्त्व से ही जीव को प्राप्त होते हैं। धर्म व धरम के धारक जीवों ने अपने जीवन को किस समय नियम पालन कर सुख को प्राप्त हुए हैं जिसमें सन्मार्ग का उपदेश देकर कुमार्ग से घृणा की गई है तथा विकथाओं से बचकर भय पुंडरीक पुरुषों की कथाओं में तथा संयम ध्यान की चर्चा तथा सम्यक्त्व समाधि का, और साधन का जिसमें उपदेश दिया गया है वह शिक्षा कही गई है।

जिस कुल में राजा, महाराजा, धर्मात्मा जीव उत्पन्न हुए हैं। जिसकी परिपाटी कन्या लेने देने की चली आ रही है जिसमें रांड, विधवा व अन्य हीन जाति व अन्य कुल की स्त्री की संतान न हो उस कुल को सुकुल कहते हैं। वे कुल क्षत्रीय ब्राह्मण वैश्य

है पिता के वंश को कुल कहते हैं माता के वंश को जाति कहते है। जिस माता के वंश में परम्परा से विधवा विवाह, अछूत व छूत कन्या के साथ विवाह न हुआ हो। अपने वंश परम्परा के अनुसार ही विधि हो उसको सुजाति कहते हैं।

गया पालन जीवों पर करुणा कर मृत्यु व संकट से बचाना तथा पापों के कारण भूत व्यसनों का त्याग करना। हिंसा, भूठ, चोरी, कुशील का सेवन करने का त्याग करना। तथा परिग्रह प्रमाण कर संतोष करना। यथायोग्य बड़े छोटे वृद्ध व गुरुओं की विनय करना। गुरुओं का आगमन जान आगे जाना, आदर पूर्वक नमस्कार विनय करना, तथा जीवों के साथ मधुर परम हितकारी थोड़ा वचन बोलना, अन्य प्राणियों के साथ भी ईर्षा द्वेष व वेईमानी, मायाचारी रूप वचन नहीं बोलना अन्य के द्रव्य का अपहरण नहीं करना तथा स्वपर जीवों को सन्मार्ग में प्रेरित करना तथा सन्मार्ग का उपदेश देना ये सब सुगुण कहलाते हैं। देवशास्त्र गुरु की पूजा करना, दानादि क्रिया करना इस प्रकार सुगुण बहुत से हैं।

सुलक्षण-अपने से बड़े गुरुजनों की आज्ञा का पालन करना, विनय सहित उठना बैंठना तथा हित, मित, प्रिय, मधुर बोलना सम्यक्त्वाचरण करना तथा पाप भीरू होना, धार्मिक कार्यों में में सबसे आगे रहना, धर्मात्माओं से प्रेम करना, धर्मात्माओं के ऊपर आई हुई आपत्ति को दूर करना, जीवों के उपकार की भावना का होना ये सब सुलक्षण हैं।

जिस देश में राजा धर्मात्मा तथा धर्म में निष्ठा रखने वाला हो, प्रजा को सतत धर्म की प्रेरणा करता हो, धर्मात्मा जनों का विनय आदर सत्कार करता हो, जिस देश में सज्जन सदाचारी जन निवास करते हों जहां जिस क्षैत्र में दुराचारी दुष्ट मायावी

निर्दयी व चोर ठग लुटेरे परस्त्री व वेश्या के सेवन करने वाले न हो, द्यूत क्रीड़ा करना करने वाले व निर्दयी मांस भक्षी तथा मदिरापान न करने वाले हों उस क्षेत्र को सुदेश कहते हैं। ऐसे देश में ही धर्म पाला जा सकेगा इसलिए ऐसे देश को सुदेश कहते हैं।

सुक्षेत्र मकान सेवक सुर्वण चांदी इत्यादि धन वैभव कीर्ति का होना आदर का होना राजपद मिलना ये सब सम्यग्दृष्टि जीव वैभव को पा लेते हैं। सम्यक्त्व सहित संयम, तप, दान पूजाशील, उपवास, देश चारित्र, सकल चारित्र इत्यादि समिति-गुप्ति ये सब भव्य सम्यग्दृष्टि ही प्राप्त करते हैं। संयम पूर्वक (खाना) भोजन करना, संयम पूर्वक पंचेन्द्रियों के विषयों का भोग उपभोग करना। अपने ब्रह्मचर्य में स्थिर रहना, दिशा-विदिशाओं की मर्यादा कर अनर्थ दण्डों का त्याग करना, सप्तव्यसनों का त्याग कर देश व्रत पालन करना, सामायिक तीन वार कर समताभाव का होना, अधिक परिग्रह की इच्छा न करना, विनय वैयावृत्ति दान पूजादि करना इत्यादि सुशील सम्यग्दृष्टि को ही प्राप्त होते हैं। हितकारी, संयमी, सदाचारी दयावान, पाप भीरु, सन्मार्ग में चलने वाले परोपकार करने में रत रहने वाले मित्रों का मिलना यह सव सम्यक्त्व की ही महिमा है। भाई, पुत्र, स्त्री, माता-पिता, सुजन, सम्बन्ध, बहन, पुत्री इत्यादि अपने योग्य धर्मात्मा सज्जन सदाचारी मिलना यह सम्यक्त्व का ही प्रभाव है अल्प आयु का न होना, महर्द्धिक देवों में उत्पन्न होना माहेन्द्रों में उत्पन्न होना यह सव सम्यक्त्व का ही महात्म्य है। निरोग शरीर अंग उपांगों की हीनाधिकता से रहित सुडोल सुन्दर समचतुरसंस्थान वज्रवृषभ नाराच इत्यादि सम्यक्त्व के प्रभाव से ही जीव को प्राप्त होती हैं।

इस जीव का सम्यक्त्व के समान भूत, भवि यत, वर्तमान तीनों कालों में दूसरा कोई उपकारी नहीं है । यह स यक्त्व देव गति के सुखों में जीव को पहुंचाता है अथवा देता है। तत्पश्चात चक्रवर्तीपद को अर्पण करता है तथा चौदह रत्न नव निधि छियानबे हजार स्त्रियों का स्वामी व सार्वभोम पृथ्वी का अधिपतिपद प्रदान करता है। अन्त में तीनों लोकों में पूज्य ऐसे तीङ्कर पद को प्राप्त करता है। यह सम्यक्त्व अन्त में अविनाशी टंकोत्कीर्ण मोक्ष सुख जिसका अन्त नहीं उस मोक्ष सुख को देता है सम्यक्त्व का ही महात्म्य है।

भावार्थ--संसारी प्राणियों का मित्र परमोपकारी सम्यक्त्व है। सम्यग्दृष्टि जीव मरने के पीछे देवों का स्वामी इन्द्र होता है जिसकी आज्ञा का पालन असंख्यात देव करते हैं वह इन्द्र सागरों की आयु पर्यन्त स्वर्गों के दिव्य सुखों का अनुभव करता है। वह इन्द्र अनेक विभूतियों से अलंकृत रहता है अणिमा-महिमा इत्यादि ऋद्धि का धारी होता है। स्वर्गों के सुख भोग कर मरण करके मध्य लोक में चक्रवर्ती होता हैं जिसके सात चेतन सात अचेतन ऐसे चोदह रत्न तथा नव निधियों का स्वामी होता है। जिस चक्रवर्ती की सेवा बतीस हजार मुकट बद्ध राजा करते हैं जिसके छियानबे हजार रानियां तथा चोदह लाख हाथी, रथ होते हैं ओर अठारह करोड़ घोड़ों का स्वामी होता है। छह खण्ड भूमि का स्वामी होता है जिसकी आज्ञा का पालन देव दानव मनुष्य सभी करते हैं। ऐसा चक्रवर्ती होता है। (वही मरण कर के स्वर्गों के सुखों का अनुभव करता है।) संसार शरीर भोगों से विरक्त होकर जिन दीक्षा को धारण कर केवल ज्ञान को प्रकट कर तीनों लोकों के भव्य प्राणियों को मोक्षमार्ग का उपदेश देकर सब प्राणियों का शरणभूत होता है तथा सब

कर्मों का नाशकर अविनाशी अनन्त मोक्ष सुख को प्राप्त करता है यह सम्यक्त्व का ही उपकार है।

हे भव्यात्मन् मनुष्य जन्म प्राप्त करने का तो यही सार है कि सम्यक्त्व उपार्जन करो क्योंकि जब मनुष्य पर्याय का विनाश हो जायगा फिर क्या करेगा। करोड़ों उपाय कर उस सम्यक्त्व को उपार्जन करो जिसके होते ही संसार के जन्म मरण का अन्त हो जाय। यदि यह नर जन्म बीत गया तब अनन्त भव धारण करने पर भी मनुष्य भव की प्राप्ति होना दुर्लभ है। इस शरीर का कब किस काल में विनाश हो जायगा इसका कोई भरोसा नहीं। सम्यक्त्व की प्राप्ति होने पर ही अविनाशी अनन्त सुख की प्राप्ति होगी इसके बिना उस मोक्ष सुख की प्राप्ति नहीं हो सकेगी। संसार अवस्था में अनन्त भव धारण किये परन्तु सम्यक्त्व उपार्जन करने का प्रयत्न ही नहीं किया इसलिये कोई भी उपाय बनाकर सम्यक्त्व को अपने में प्रकट करो यही मनुष्य भव जिन धर्म प्राप्त हुए का सार है।

जुआ खेलना, शराब पीना, मांस खाना, शिकार खेलना, वेश्या सेवन करना, चोरी करना और परस्त्री के साथ रमण करना ये सात व्यसन हैं ये ही महापाप हैं ऐसा भगवान ने कहा है। ये व्यसन संसार में वैर विरोध ने साधन हैं और मिथ्यात्व के पोषण करने वाले मंत्री के समान हैं। अथवा धाय के समान हैं। इन व्यसनों के सहकारी आठ मद हैं ज्ञान मद जातिमद कुलमद रूपमद, तपमद, बलमद, ऐश्वर्यमद, पूजामद ऋद्धिमद। ये मिथ्यात्व अज्ञान के सहकारी योधा हैं। इनका त्यागकर विनम्रता को धारणकर देवमूढ़ता गुरुमूढ़ता धर्म-मूढ़ता इनका स्वरूप जान त्याग करो यहां छह अनायतनों का त्याग करो। इहलोक भय, परलोक भय, मरण भय, अनरक्षक

भय, रोग भय, राज भय, आकस्मिक भय, चौर भय ये सात भय हैं ये व्यसनों के सेवन करने वाले जीवों के यहां निवास करते हैं इसलिए व्यसन और भयों का त्याग करो। भीरु मनुष्य ही दूसरों की शरण की इच्छा करता है। भय से व लोभ से अन्य अनायतनों का सेवन कदापि नहीं करना चाहिये। उनके गुणों की प्रशंसा भी नहीं करना चाहिये क्योंकि उनकी प्रशंसा कीर्ति गुणगान करने से दर्शन विशुद्धि में दोष उत्पन्न होता है। इन सब दोषों के रहते हुए यथार्थ सम्यक्त्व नहीं ठहरता। मूढ़ता और अनायतन व्यसन ये सब अनन्त संसार के कारण हैं और पापानुबन्धी पाप के कारण हैं। पुण्यानुबन्धी पुण्य के साक्षात रूप से घातक हैं।

ऊर्ध्व मध्य अधो लोक में व तीनों कालों में दर्शन विशुद्धि के समान सुख सम्पत्ति देने वाला कोई नहीं। ऐसा कोई भी नहीं देखा जाता जो प्राणियों के दुःखों का नाश कर सुख देने में समर्थ हो। इसलिये दर्शन विशुद्धि करना ही इस नर जन्म पाने का सार है।

शास्त्रों का गुरुओं का उपदेश सुनना विनय करना ज्ञानाभ्यास करना देश चारित्र सकल, चारित्र का पालन करना अनेक शुभ गुणों का पाना संयम शीलों का पालन करना ये सब ही बिना सम्यक्त्व के निष्फल हैं जैसे बिना जड़ के वृक्ष की स्थिति वृद्धि साखा पत्ते व फूल फल देने में समर्थ नहीं।

विनय सम्पन्ता

विनय के चार भेद हैं दर्शन विनय, ज्ञान विनय, चारित्र विनय, उपचार विनय।

दर्शन विनय

धर्म और धर्म के धारक में प्रीति का उत्पन्न होना, मान कषाय का उपशमाना जिन मन्दिर व जिन बिम्ब की भक्ति पूर्वक पूजा करना, सेवा करना, आदर की दृष्टि से देखना। यथा स्थान उपकरणों को क्षेपण करना, मन में आकुलता का न होना, स्तुति व स्त्रोत पूजापाठ आदि शुद्ध उच्चारण करना, गुरुजनों की सेवा भक्ति करना, गुरुजनों को आता देख आगे जाकर मिलना आदर करना नमस्कार कर उनकी रत्नत्रय की कुशलता पूछना, उच्चासन देना, आप नीचे आसन पर बैठना, तथा हाथ पैरों का दबाना, सेवा वैयावृत्ति करना, आसन फलक की व्यवस्था करना।

ज्ञान विनय

शास्त्र स्वाध्याय करते समय विनय पूर्वक चौकी पर रख बिना पत्र विदारण किये यथा काल में नमस्कार कर अर्घ उतार शास्त्र का स्वाध्याय करना यह विनय है।

राग द्वेष के वृद्धि के हेतु ऐसे शास्त्रों का स्वाध्याय नहीं करना। ज्ञानोपार्जन के हेतु उपकरण पाटी पुस्तक आदि को यथास्थान रखना, विनाश नहीं होने देना। विद्या अध्ययन कराने वाले गुरु का तिरस्कार नहीं करना, उनकी विनय करना, उनके द्वारा किये गये उपकार को कदापि नहीं भूलना। उनके पास पठन-पाठन के लिये उपकरणों का जुटा देना। जीर्ण पुराने शास्त्रों को पुनः लिखवाना या छपवाना, लिखे हुए शास्त्रों को अच्छी तरह से सुन्दर वेष्टनों में बांध रखना व यथास्थान रखना यह ज्ञान विनय है। स्वाध्याय का काल जिस प्रकार आगम में कहा गया है उसी प्रकार काल व क्षेत्र का विचार कर शास्त्र का स्वाध्याय करना यह ज्ञान विनय है ज्ञान के उपकरणों की विराधना करना, शास्त्रों को फाड़ फेकना, यत्र-तत्र डाल देना, पड़ा हुआ छोड़ देना, पत्रों को फाड़ फेक देना, कोनों को तोड़ देना व पैरों से कुचल देना व शास्त्रों का आसन बन कर उनके उपर बैठ जाना इत्यादि कारणों से तीव्र ज्ञाना-वर्णीय कर्म का बंध होता है।

चारित्र विनय

संयम और संयमी जीवों को देख प्रसन्न होना, संयमी जीवों की विनय आदर करना, प्रणाम कर उच्चासन देना और उनकी प्रशंसा करना। उनके लिये संयम के उपकरण देना आसन वसतिकादि देना पिक्षिका शास्त्र कमण्डलु चटाई इत्यादि संयम की वृद्धि के कारणों को जुटा देना। आहार औषधि अभय ज्ञान दान देना, उनकी पूजा भक्ति करक अपने जन्म को कृतार्थ मानना यह चारित्र विनय है। चारित्र पालन करने वालों को धन्य मानना, पुण्य का कारण जान प्रसन्न मन होकर संयमी बनने के

भाव करना व संयमियों को डिगता जान संयम में दृढ़ करना यह चारित्र विनय है।

संयमासंयम चारित्र श्रावक के होता है उस संयमासंयम के धारक श्रावकों को आदर की दृष्टि से देखना तथा स्वयं आदर भक्ति पूर्वक निरतिचार पालन करना तथा उस व्रत में ग्लानि न कर उत्साह पूर्वक पालन करना, व सकल संयमी व संयम का पालन करना व पालन करने वालों की विनय करना व भक्ति करना यह चारित्र ही निश्चय धर्म है चारित्र के पालने से ही जीवों को मोक्ष की प्राप्ति होती है। वह चारित्र जघन्य उत्कृष्ट की अपेक्षा अनेक प्रकार का है। प्रथम संयमासंयम नाम का चारित्र श्रावक का कहा है। उसके क्रम से ग्याहर भेद हैं। ये भेद आरम्भादि त्याग की अपेक्षा आगे-आगे की प्रतिमाओं में परिणामों की विशुद्धता अधिक है। प्रथम दर्शन प्रतिमा, दूसरी बारह व्रतों को धारण करना, तीसरी सामायिक, चौथी प्रोषधोपवास, पांचवीं सचित्तत्याग, छटवीं रात्रि भोजन त्याग, दिवा, मैथुन त्याग, सातवीं ब्रह्मचर्य, आठवीं आरम्भ त्याग, नवमीं परिग्रह त्याग. दशमीं अनुमोदना त्याग, ग्यारहवीं उदिष्ट भोजन का त्याग ये सब संयमासंयम के भेद क्रम से हैं। सकल संयम के भी विशुद्धि की अपेक्षा अनेक भेद हैं सामायिक चारित्र, क्षेदोपस्थापना, परिहार. शुद्धि, सूक्ष्मसांपराय, यथाख्यात चारित्र तथा औपशमिक चारित्र और क्षायक चारित्र के भेद से अनेक प्रकार का है। इन चारित्रों को धारण करना निरतिचार यथाकाल पालन करना। अन्य जनों के द्वारा ग्रहण किये गये चारित्र को देख उत्साहित होना व उत्साहित करना। उनको देख धन्य-धन्य अपने को मानना यह चारित्र विनय है। शरीर को घिनावना व मैला देख व पसीना के आने से जिनके शरीर से

दुर्गन्ध यदि आवे तो भी उनसे मुख फेर ग्लानि नहीं करना। उनके गुणों में अनुराग करना व उनके गुणों की मुझे भी प्राप्ति हो ऐसी भावना करना यह चारित्र विनय है।

अपनी शक्ति विचार आतापनयोग धारण करना, रसों का त्याग करना, उपवास करना, उनोदर भोजन करना, आचाम्ल व अधपेट भोजन करना इत्यादि अनेक प्रकार से भी पालन करना। चारित्र से घृणा नहीं करना। धारण किए हुए चारित्र में लगे हुए दोषों (को माया मिथ्या हीनाधिक सूक्ष्म वादर) को गुरु के पासशांत स्थान में कहना कहते समय माया रहित कहना मिथ्या रहित कहना हीन नहीं कहना, अधिक नहीं कहना, मोटे दोष जो दूसरों ने देखे हैं उनको कहना सूक्ष्म दोषों को नहीं कहना। सूक्ष्म दोषों को कहना, परन्तु वड़े दोषों को नहीं कहना। आचार्यों को प्रथम पूछ लेवें कि अमुक दोष का क्या प्रायश्चित है तव आचार्य कहें कि अमुक प्रायश्चित है तव अपने दोष को कहना ये प्रायश्चित के दस दोष हैं इनको नहीं लगाने वाले के ही चारिच की शुद्धि और वृद्धि होती है यही चारित्र विनय है।

उपचार विनय

गृहस्थ जन अपनी जाति व कुल के वड़े पुरुषों को आता देख उनका यथा योग्य आदर करना व उनकी आज्ञा के अनुसार अपना आचरण करना यह उपचार विनय है। अपने गुरु जनों विद्या गुरु जिन्होंने विद्या अध्ययन कराया हो उनको आता देख आगे जाकर उनको प्रणाम करना उच्चासन देना कुशलता पूछना नीचे वैठना प्रसन्नता पूर्वक आज्ञा का पालन करना, माता पिता, वाल वृद्धों की हाथ पैर की सेवा करना यह उपचार

विनय है। यदि रोगी व असाध्य हो तो उनकी औषधि व रहने के स्थान, तख्त, चटाई, प्रकाश, पानी आदि की भक्ति पूर्वक व्यवस्था करना यह उपचार विनय है। इस प्रकार विनय का कथन संक्षेप से किया है।

यदि दीक्षा में छोटे हैं अथवा बड़े हैं ऐसे मुनियों को सामने से आता हुआ देखकर अपने आसन को छोड़कर कुछ दूर आगे जाकर विनय पूर्वक नमस्कार करें। तत्पश्चात् मार्ग में गमन करने से जिनका शरीर कृष हो गया है तथा थकावट आ गई है व शीत की बाधा से घबड़ाए हुए हैं व उष्णता की बाधा से व्याकुल चित्त हो रहा है, व परीषहों के आ जाने पर उपसर्ग के होने से अत्यन्त अधीर हो रहे हैं उनको अपने स्थान पर लाकर उच्चासन देना हाथ पैर का मर्दन करना उनको योग्य आसन शैया व उपकरणों की विधि मिला देना उनकी थकावट व आकुलता को दूर करना। पुनः पास में दाई बाई ओर बैठकर सविनय हो रत्नत्रय की कुशलता पूछना कि आपका रत्नत्रय कुशल है आप कहां से विहार कर आ रहे हैं आपका शुभनाम क्या है आपके गुरु का शुभ क्या नाम है।

पुनः प्रणाम् कर दर्शन करें उसके पश्चात् दाहिनी तरफ अथवा बांई तरफ बैठकर रत्नत्रय की कुशलता पूछना चाहिये हे भगवन आपका रत्नत्रय कुशलता तो है आपका ध्यान स्वाध्याय और अध्ययन तो कुशलता पूवक चल रहा होगा, तथा आपका चारित्र तो वृद्धि युक्त ही होगा। मुझ सेवक को भी कोई आज्ञा दीजिए जिससे हम आपकी सेवा वैयावृत्ति कर सकें। उपचार कर उनकी थकावट को दूर करना व आकुलता को धैर्य बंधाकर दूर करना कि हम आपके ही हैं आपकी सेवा हमारे से जितनी बनेगी वह हम करेंगे। आप अपना ही हमको जानना

इस प्रकार सांत्वना देकर धैर्य बंधाना।

शंकादि आठ दोष, आठ मद, छह अनायतन, तीन मूढ़ताओं का त्याग कर निशंकादि गुणों से संयुक्त होते हुए सम्यक्त्व के पांच अतीचारों को नहीं लगने देना, इस प्रकार निरतिचार सम्यक्त्व आराधना होती है। यह दर्शन विनय है।

यह दर्शन विनय निशंकादि आठगुणो से युक्त होनी चाहिये क्योंकि जहां पर निशंकादि गुणों की भावना नहीं होती है वहां पर दर्शन विनय होने की सम्भावना ही नहीं हो सकती। आचार्य समन्तभद्र महाराज ने रत्नकरण्ड श्रावकाचार में कहा है कि सम्यग्दर्शन के जो आठ अंग हैं उन अंगों में से एक अंग भी न हो तो पाप मलों को नाश करने में समर्थ नहीं होता जैसे मात्रा हीन मंत्र विष वेदना को दूर करने को समर्थ नहीं होता चाहे उस मंत्र को कितनी ही बार प्रयोग किया जावे। आप्तागम गुरु और धर्म, धर्म के धारक इनमें कोई प्रकार की शंका न करते हुए उनके द्वारा बताये हुए आगम प्रमाण नय निक्षेपों का अनुसरण करना जैसा आगम में सम्यग्दर्शन कहा है वह ही आप्त के द्वारा कहा हुआ है, उसका ही वे उपदेश देते हैं वही सत्य है अन्यथा नहीं इस प्रकार निशंकित होना ही दर्शन विनय है।

विनयवान मनुष्य अनेक गुणों को प्राप्त होता है। विनय वान के स्वभाव से ही बहुत से गुण प्राप्त हो जाते हैं। झुककर चलने पर दरवाजे की टक्कर लग जाने से बच जाता है विनय से चलने से सब लोग देख प्रसन्न हो आदर करते हैं। ऊपर को मुख उठाकर चलने वाले का मस्तक दरवाजे की चोट लगने से भग्न हो जाता है। विनयवान मनुष्य ही पूज्य होता है। विनय के भार से झुका हुआ ही शोभा को प्राप्त होता है।

जैसे वृक्ष फल सहित होता है तब ही झुकता है और पृथ्वी को स्पर्श करता है परन्तु फल रहित वृक्ष की शाखायें नीचे को कदापि नहीं आती। अथवा जब वृक्ष बड़ा हो जाता है तब उसकी डालियां नीचे की तरफ झुक जाती है।

जिस प्रकार नदी के किनारे पर रहने वाले लघु वृक्ष विनय के भार से युक्त होने के कारण कितना ही वेग से बहने वाला पानी उसको नष्ट नहीं कर सकता। परन्तु अकड़ के खड़े रहने वाले बड़े से बड़े पेड़ों को पानी बहा ले जाता है इसलिए विनय ही सब गुणों का भूषण है।

माता, पिता, सास, स्वसुर व पितामह, दादा, बाबा, मातामह व परिवार के भाई बन्धु विद्या अध्ययन कराने वाले अध्यापक तथा धर्म मार्ग में लगाने वाले धर्म गुरुओं की विनय अवश्य ही करो क्योंकि ये सब ही गुरु संज्ञा को प्राप्त हुए हैं। उनकी निन्दा व हास्य व उनके प्रति भण्ड वचनालाप कदापि मत करो तिरस्कार करना ही अविनय है। अविनयी मनुष्य के पास कोई गुण नहीं रह जाता। अविनयी जीव व्यवहार में भी अपने माता पिता की सम्पति का अधिकारी नहीं बन पाता, जिस प्रकार उसको दुःखी होना पड़ता है। और निन्दा का पात्र बन जाता है। अपने से यदि उम्र में छोटे हैं उनकी भी विनय अवश्य करना चाहिये। उनको आदर पूर्वक पास बिठाना, कुशलता पूछना, आने का कारण पूछना यह छोटों की विनय है।

जुआ खेलना, मांस खाना, मद्यपान करना, चोरी करना, शिकार खेलना, वेश्या के साथ रमण करना, परस्त्री में आशक्त होना ये सात व्यसन हैं तथा इहलोक परलोकादि भय, छह अनायतन, तीन मूढ़ता, शंकादिक आठ मल तथा सम्यक्त्व के पांच

अतीचार रहित सम्यक्त्व का श्रद्धान का होना ही दर्शन विनय है। कुदेव, कुआगम, कुधर्म, कुलिंगीयों की विनय, स्तुती, पूजा व दानादि भी नहीं करना चाहिए। निशंकादि आठ गुणों को धारण करते हुए छह आयतन देव, मन्दिर और उस मन्दिर के पूजक तथा सम्यक्त्व और उस तप के करने वाले यतीश्वर सम्यग्धर्म और धर्म के धारक इनको पूजा करना विनय करना इनको आयतन कहते हैं। अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय सर्व-लोक स्थित सर्वसाधु ये पंचपरमेष्ठी हैं इनकी भक्ति करना, पूजा करना, करवाना, करते हुये की अनुमोदना करना यह विनय है।

विनय गुण के घातक ये सात व्यसन हैं। ये व्यसन जहां पर जिस जीव के साथ रहते हैं वहां विनय गुण नहीं। जहां पर सात भय रहते हैं वहां पर यथार्थ दर्शन, विनय कदापि नहीं हो सकती। इनका स्वरूप दर्शन विशुद्धि भावना में कर आये हैं। जिन वचन में शंका का होना यह दर्शन विनय का दूषण है। जहां शंका होगी वहां पर भय भी यथा काल रह जायेगा।

अपने द्वारा दिये गये दान की प्रशसा नहीं करना तथा पूजा व तप जो किया जा रहा है उसके फल की इच्छा नहीं करना जिस प्रकार किसान अपने खेत में बीज बो देता है और उसमें वह बाड़ लगाकर होने वाली फसल की रक्षा करता है परन्तु भूसे की इच्छा नहीं करता। जब धान्य अच्छी तरह से आवेगा तब भूसा तो उसको आप ही मिल जायेगा। जिस विनय के प्रभाव से मोक्ष सुख मिल सकते हैं तो क्या संसार के सुख नहीं मिलेंगे ? यदि इच्छा करता है तो दर्शन विनय का दूषण है।

गुणवान शीलवान धर्मात्मा योगी जनों के दूषणों की खोज करना उनके शरीरादि को मैला देख घृणा करना यह दर्शन

विनय का दूषण है। सम्यग्दृष्टि देश संयम व सकल संयम के धारक प्राणियों की निन्दा करना, हास्य करना, उनके संयम में विघ्न डालना, तथा संयम से भ्रष्ट कर देना, अथवा अज्ञानियों के द्वारा कोई दोष लगाया गया हो तो उसको दबाना नहीं, परन्तु उसको बाहर फैला देना, यह दर्शन विनय का दूषण है। जो कोई संयम में दृढ है उसको ठग या मायावी कहना या वगुला भगत कहना व उसकी मजाक उड़ाना यह दर्शन विनय का दूषण है। धर्म व धर्म के धारक जीवों में श्रद्धान का न होना यह चारित्र व तप किस काम का, इनकी अपेक्षा तो वे साधु तपस्या अच्छी करते हैं, ये तो श्रावकों की मुफ्त की रोटियां तोड़ते हैं। कुछ भी काम काज नहीं करते इस प्रकार की भावना का होना दर्शन विनय का दूषण है।

साधर्मी भाइयों को आता देख आगे से उसका निरादर करना, गाली-गलोच करना, उनको दुष्ट मायाचारी ठग कहना, तथा झूठा दोष रोपण कर उनका तिरस्कार करना व विसंवाद लगा देना, यह दर्शन विनय का दूषण है। जहां पर जिस किसी प्रकार से सच्चे धर्म का प्रकाश हो रहा है व पूजा दानादि क्रिया कर व रथयात्रा के द्वार प्रभावना की जा रही हो उस स्थान पर जाकर रथ पालकी आदि को नहीं निकालने देना रथादि को नहीं देना। ताले में बन्द कर देना। व्रत उपवास के द्वारा धर्म की प्रभावना होती हो तो वहां कहना कि अरे तुम तो बड़े ही मूर्ख हो जो बिना प्रयोजन ही इतना रुपया बाजों व उपकरणों में व पंडितों को देने में खर्चते हो। इस प्रकार प्रभा-वना को रोक देना यह दर्शन विनय का दूषण है।

ज्ञान पूजा कुल जाति रूप यौवन ऐश्वर्य तप ये आठ मदों का त्याग तथा पंच गुरुओं के गुणों का बार-बार चिन्तवन करना भक्ति करना तथा उनके गुणों का अनुशरण करना उनके

बताये हुये मार्ग पर श्रद्धान पूर्वक गमन करना। दान मान सम्मान करना व पूजा भक्ति करना दर्शन विनय।

विनम्र होकर नमस्कार कर वाम भाग में खड़ा व बैठकर पूछे कि हे गुरु व हे मुनि महाराज आपका रत्नत्रय क्षेम कुशल है। आपका सम्यग्दर्शन व सम्यक्चारित्र व तप तो कुशल है। आपका चारित्र तो महान है हम सरीखों का बड़ा ही भाग्योदय है जिससे आप समान महा संयमी तपस्वी योगियों के दर्शन मिले। हम आपके दर्शन कर कृत कृत्य हो गये। और भी यथा योग्य विनय करे। यह दर्शन विनय है।

वैयावृत्ति यथायोग्य देश काल क्षेत्र व शरीर की स्थिति का विचार करना। उसके सामने वैयावृत्ति करना यह विनय है। कोई मुनी रोगी हैं उनके लिए औषधि व आहार की सुयोग्य व्यवस्था करना, या करवा देना भी वैयावृत्ति है। जो वृद्ध हैं व मासोपवास पक्षोपवास करने वाले मुनिराज हैं उनकी उसी प्रकार सेवा वैयावृत्ति करना, हाथ पैरों का दबाना, कमण्डल में प्रासुक पानी भर देना, प्रासुक आहार की व्यवस्था करना व उनकी जैसी आज्ञा हो वैसा आचरण करना यह विनय संक्षेप से कहीं विशेष आगम से जान लेना चाहिए।

अपने भावों में मान कषाय का क्षय करना व दवा देना यह सर्वोत्तम विनय है। वाह्य अनेक कारणों के मिलने पर भी मान कषाय का न होना ही मूल विनय है। यह मान कषाय मनुष्य के सम्पूर्ण गुणों का विध्वंशक है। तथा नरकगति और तिर्यञ्च गति का कारण है। अथवा अनंत संसार का भी कारण है। यह मान कषाय जब तक क्षय नहीं होता तब तक जीवों के आत्मिक गुणों का विकास नहीं हो सकता। मान कषाय के उदय होते ही आत्मा के श्रद्धान गुण को नाश करता है। तथा

देश संयम व सकल संयम का नाश करता है। व सकल चारित्र यथाख्यात चारित्र को प्राप्त ऐसे योगीश्वरों को भी ग्यारहवें गुण स्थान से लाकर मिथ्यात्व में रख देता है। मान कषाय जहां रहती है वहां दया सत्य क्षमादि गुण नहीं रहते। यह मान कषाय आपस में सबके साथ द्वेष व बैर का कारण भी है। तथा दूसरों को यानी मनुष्य सतत हीन दृष्टि से ही देखता है और पर की निन्दा करता हैं अपनी बढ़ाई कीर्ति का इच्छुक रहता है जिससे नीच आयु का बंध कर नारकी व तिर्यञ्चों में उत्पन्न होता है।

आगे ज्ञान विनय का विशेष कहते हैं।

ज्ञानाचार के आठ भेद हैं उन भेदों को जानकर ज्ञानाचार के दोषों का परिहार करना। सम्यग्ज्ञान के तीन दोष हैं संशय विमोह और अनध्यवसाय। इन दोषों के रहते हुए जो ज्ञान है वह यथार्थ सम्यग्ज्ञान नहीं। ज्ञान उपार्जन व अध्ययन करते समय आगे कहे जाने वाले दोषों का त्याग करने पर ही ज्ञान विनय होती है। जिस काल में भूकंप हो उस काल में स्वाध्याय व ज्ञानाभ्यास नहीं करना चाहिये। जिस काल में कोई रोगी के शरीर में वेदना होने के कारण जोर-जोर से रोता हो, चिल्लाता हो उस काल में स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

बिजली के पड़ने व बादलों के कड़-कड़ करने पर स्वाध्याय बंद कर देना चाहिए। अधिक जोर से पानी की वर्षा होती हो तो भी स्वाध्याय बंद करना चाहिए। ग्राम व नगर में आग लगजावे तब भी शास्त्र स्वाध्याय बंद कर देना। आपस में अथवा राजाओं में भयानक युद्ध का कुहरम होता हो, सुवह, शाम, मध्यान्ह इन तीनों कालों को संध्या कहते हैं। ये सध्यायें छः घड़ी को होती हैं इनमें स्वाध्यान न करें जहां पर जीवों का घात

होता हो ऐसे समय विद्या अध्ययन व स्वाध्याय उपदेश नहीं देना चाहिए। इस प्रकार करने को काल शुद्धि कहते हैं। इस कालशुद्धि का विचार करने वालों को विद्या अध्ययन करने में सफलता प्राप्त होती है।

स्वाध्याय करते समय अक्षर कम करके पढ़ना अथवा छोड़ देना मात्रा भूल जाना या अधिक कर पढ़ना यह ज्ञान विनय का दूषण है। वाक्य को छोड़ देना सन्धि के स्थान पर सन्धि न कर अन्य स्थान पर सन्धि करना यह भी दूषण है। स्वर को छोड़कर व हीनाधिक कर पढ़ना। तथा ह्रस्व को दीर्घ दीर्घ को ह्रस्व पढ़ना यह भी दोष है। दीर्घ मात्रा को छोड़कर ह्रस्व मात्रा ह्रस्व मात्रा को दीर्घ पढ़ना यह भी दूषण है। व्यजन को छोड़ देना, वाक्य को पूरा पढ़ना, नहीं पढ़े हुए वाक्य का विपरीत अर्थ करना। अपनी तरफ से कुछ अधिक करना व हीन करना यह ज्ञानाचार का दोष है। काल का अतिक्रम करना व स्वाध्याय कालों को छोड़ कर अकालों में स्वाध्याय करना व प्रदोप काल में स्वाध्याय करना नहीं चाहिये यह ज्ञान विनय है।

कालातिक्रम जैसे कोई राजा भूतकाल में हुए हैं उनको भविष्य काल की क्रिया लगाना, जो भविष्य काल में होने वाले हैं उनके स्थान में भूतकाल की क्रिया लगाना। या भूतकाल में वर्तमान का प्रयोग, वर्तमान में भविष्य काल का प्रयोग करना, यह स्वाध्याय व ज्ञान विनय का दूषण है। लिंग व्यभिचार स्त्रीलिंग को नपुंसकलिंग कर प्रयोग करना व नपुंसकलिंग को पुलिंग कर प्रयोग करना व पुलिंग को स्त्रीलिंग वताना यह लिंग व्यभिचार है। महाकाल की वृष्टि होना पवन का जोर से चलना जिससे सब जगह हा-हाकार मच रहा हो ऐसे काल

में वांचना स्वाध्याय नहीं करना चाहिये। यदि करे तोसम्यग्ज्ञान का दूषण है। कोई विशेष कारण मिलने पर मन में आकुलता हो ऐसी बेला में शास्त्र अध्ययन नहीं करना चाहिये। किसी मुर्दा को जलाकर या स्पर्श कर या चाण्डाल, कसाई, धोबी इत्यादि का स्पर्श हो गया हो या शौच जाने की आकुलता हो तो भी शास्त्राभ्यास नहीं करना यह ज्ञान विनय है।

शास्त्र को जहां तहां डाल देना (रख देना) पत्रों को फाड़-कर फेक देना व पत्रों का विदारण कर देना व जहां तहां से पत्र पढ़ना और डाल देना अपने उपाध्याय (पढ़ाने वाले गुरु का नाम पूछने पर बताना नहीं मुझको किसी ने नहीं पढ़ाया मैंने स्वयं ही पढ़ लिये है। तथा पढ़ाने वाले गुरु का तिरस्कार करना निरादार व खोटी दृष्टि से देखना अपमान करना। अपने से बड़े विद्वानों से द्वेष करना। जाने हुए पदार्थ शब्द के अर्थ को छिपा लेना पूछने पर नहीं बताना यह दूषण ज्ञानावरण के तीव्र अनुभाग और प्रदेश बंध तथा स्थिति बंध के कारण है। यही मूल ज्ञान विषय के दोष हैं।

शास्त्र पढ़ने के पूर्व में शास्त्र को उच्च स्थान चौकी पर रखकर शास्त्र की पूजा कर मंगलाचरण करे और कायोत्सर्ग कर बार-बार शास्त्र को नमस्कार कर विनय पूर्वक पढ़े। अक्षरों को शुद्ध स्पष्ट उच्चारण करे, जैसा जहां प्रकरण हो वैसा ही अर्थ करे तथा यदि शास्त्र का वेष्टन फट गया हो सड़गया हो तो उसको निकाल कर नवीन शुभ्र वस्त्र में बंधकर रखे। फटे हुए शास्त्रों को पुनः लिखवाना व लिखना पुस्तक के पत्रों के कोनों को नहीं मोड़ना यह ज्ञान विनय है।

ज्ञान के पांच भेद हैं वाचना स्वाध्याय प्रश्न पूछना विद्या-भ्यास करना व पढ़े हुये शास्त्र का बार-बार स्वाध्याय, और भव्य

प्राणियों को उपदेश देना। शुद्ध उच्चारण करते हुए बार-बार अनुचिन्तन करना यह सम्यग्ज्ञाय के भेद हैं और सम्यक्त्व पूर्वक हैं।

अर्थ शब्द व दोनों को परिपूर्णता काल उपधा प्रथम अपने आचार्य का नाम न छिपाना और बहुमति यह ज्ञानाचार आठ प्रकार का है। अन्तरंग वहिरंग लक्ष्मी से युक्त जाति और कुल में चन्द्रमा के समान परामार्थ में धर्म तीर्थ के चलाने वाले भगवान तीथङ्कर देव ने प्रतिपादन किया है। उस ज्ञाना चार को मन वचन काय की शुद्धि पूर्वक में भी नमस्कार करता हूँ।

अर्थाचार—जाने हुये पढ़े हुए पदार्थ को व काव्य को अच्छी तरह मनन कर धारण करना।

व्यंजनाचार—शब्द अक्षर वाक्य का शुद्ध स्पष्ट उच्चारण करना।

तदुभयाचार—अर्थाचार और शब्दाचार का पूर्ण रूप से मनन करना।

कालाचार—योग्य काल में ज्ञानाभ्यास करना प्रातः काल मध्यान्ह काल शांयकाल भूकंप सूर्य चन्द्रग्रहण व उल्कापात व मेघों की गर्जना होते समय ज्ञानाभ्यास नहीं करना।

उपधाचार—शास्त्रों को विनय पूर्वक पढना नमस्कार करना, स्मरण पूर्वक अध्ययन करना।

स्वाचार्याधिन पन्हव—पंचाचारों के निरूपण करने वाले आचार्य व उपाध्याय का नाम नहीं छिपाना चाहिए। ग्रंथकर्ता का नाम नहीं छिपाना।

बहुमति—आचार्यादि का विनय आदर सत्कार करते हुए अध्ययन करना व किये गए उपकार को कालांतर में न भूलना

इस प्रकार ज्ञान विनय के संक्षेप से भेद कहे हैं।

भावार्थ—जिस ज्ञान से वस्तुओं का शुद्ध स्वरूप जैसा को तैसा जाना जाता है जिसके होने पर आत्मा में होने वाले अशुभ भावों का संवर हो जावे। अथवा मन, वचन, काय और इन्द्रियां अपने विभाव कार्यों से हटकर संयम में प्रवृत्त हों वही सम्यग्ज्ञान है जिसके श्रवण से काम, क्रोध, मान, माया, लोभादि रूप राग से विरक्त हो, जिसने कल्याण रूप चारित्र में रत हो, जिससे सव प्राणियों में समता भाव हो, वही ज्ञान विनय का फल है। स्वाध्याय काल में मन, वचन, काय एकाग्रता पूर्वक शास्त्र का विनय पूर्वक उच्चासन पर स्थापना करके अर्ध उतार नमस्कार करना। क्रमानुसार पठन-पाठन करना। पूजा सत्कारादि सहित पाठ व स्तोत्रादि का पढ़ना, अपने दीक्षा व शिक्षा गुरु का नाम नहीं छिपाना। जिस ग्रन्थ का अध्ययन किया गया है उस ग्रन्थ का नाम उच्चारण करना शास्त्र के रचयिता आचार्य के नाम का उल्लेख करना। पूर्ण पद वाक्य की शुद्धि से पढ़ना अनेकान्त रूप अर्थ की शुद्धि व अर्थ की शुद्धि सहित पाठादि करना इस प्रकार ज्ञान विनय के भेद प्रभेद कहे हैं। काल के भेदों को कहते हैं प्रादेशिक काल, वैरात्रिक, गोसर्ग काल। दिन अस्त होने के पीछे एक घंटा अथवा तीन घड़ी काल वीत जाने पर पूर्व रात्रि को प्रादेशिक काल कहते हैं तथा सूर्य उदय के तीन घड़ी पीछे स्वाध्याय करने का योग्य काल है। जिसमें रात्रि का भाग है वह प्रादेशिक काल है। रात्रि के पूर्व भाग के समीप दिन का पश्चिम भाग व सुवह सांय दोनों कालों में प्रदोष काल जानना। अर्ध रात्रि के पीछे तीन घड़ी वीत जाने पर वहां से लेकर दो घड़ी रात्रि रहे तव तक के काल को वैरात्रिक काल कहते हैं। तीन घड़ी दिन चढ़ने के वाद से लेकर मध्यान्ह

काल में दो घड़ी कम रहे उतने काल को नैसर्गिक काल कहते हैं। इनमें से प्रदोष काल को छोड़कर शेष दो कालों में पठन-पाठन करना चाहिये।

उत्पात से दिगाओं का लाल होना, तारा के आकार पुद्गल का पतनहोना, (तारा का टूटना) बिजली का चमकना, मेघों का गर्जना व मेघों के टकराने से वज्रपात होना, ओलों की वर्षा होना। धनुष के आकार पंचवर्ण पुद्गलों का दिखाई देना दुर्गंध मय स्थान, चर्म हड्डी, सूखे व गीले मल मूत्र की दुर्गंध जहां पर आती हो। लाल, पीले वर्ण का शाम का समय बादलों में आच्छादित दिन व चन्द्र ग्रहण, सूर्य ग्रहण का समय, (सूर्य चन्द्रमा का राहु के विमान से टकराना) लड़ाई के वचन व लाठी कृपाण वन्दूक आदि से घमासान युद्ध का होना। आकाश में धुआं के आकार रेखा दिखाई देना. भूकम्प का होना मेघों का गर्जना आंधी का चलना (महावात का चलना) महावात सहित पानी वरसना, ग्राम में आग का लगना इस प्रकार काल के अनेक भेदों को जान कर स्वाध्याय नहीं करना चाहिये यह ज्ञान विनय है। पढ़े हुए पदार्थों का चिन्तवन किसी भी काल में किया जा सकता है।

रक्त, मांस, चर्म, हड्डी, मल. मूत्र, पीप, वीर्य व रज इनका शरीर से स्पर्श हो जावे तो स्वाध्याय नहीं करना। अशुद्ध वस्तुओं का स्पर्शन नहीं करना। जहां पर पड़े हों वहां से सौ-सौ हाथ प्रमाण जमीन को छोड़कर स्वाध्याय ध्यान अध्यान करने योग्य क्षेत्र कहा है।

ईर्षा, द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ इन भावों को छोड़कर स्वाध्याय करना चाहिये यह भाव शुद्धि है। यह क्रम से देश, काल, भाव और द्रव्य शुद्धि कही है ?

सम्यग्दर्शनादि चार आराधनाओं का स्वरूप जिन शास्त्रों में गूँथा गया व जिनमें लोकालोक, क्षेत्र व भव भावों का परस्पर विरोध रहित सामान्य विशेष कथन है तथा द्रव्यों का सामान्य व विशेष कथन किया गया है जो आप्त के द्वारा कहे हुए हों जिनका (गुणधर) गणधरों के द्वारा शास्त्र रूप से अंग बाह्य व अंग प्रविष्ट में कथन किया गया है उसका ही कथन आचार्य परम्परा के अनुसार कहा है। वही शास्त्र अध्ययन करने योग्य हैं। अविरोध रूप से शास्त्र का अध्ययन करना यह ज्ञान-विनय है।

चारित्र तेरह प्रकार का है पांच महाव्रत पांच समिति तीन गुप्ति इस प्रकार तीन भेद भी हैं ये सब अच्छी तरह शल्यों का त्याग करने पर ही होते हैं। जहां पर शल्य रहती हैं वहां पर सम्यक्त्व नहीं सम्यक्त्व के अभाव होने से मिथ्याचारित्र कहा जाता है। संसार शरीर और पंचेन्द्रिय के भोगों से विरक्त भाव तथा शरीर पर से भी राग का अभाव होने पर ही नियम से आत्मा में संयम की प्रवृत्ति होती है। तत्वार्थ सूत्र में भी सातवें अध्याय में कहा है। 'निशल्यो व्रती' शल्यों के ऊपर सम्यक् विशेषण दिया है जिससे सूचित होता है, कि निःशेष शल्यों के अभाव में ही सम्यग्चारित्र रूप आत्मा की प्रवृत्ति होती है। यदि मन में शल्य बनी रहे और अपने को व्रती कहे तो क्या वह व्रती है? नहीं। वह व्रत कर्म के संवर व निर्जरा का हेतु नहीं हो सकता। पंच महाव्रतों का धारण करना पंच समितियों का पालन करना व तीन गुप्तियों का भली प्रकार से पालन करना यह चारित्र विनय है। हिंसा, झूठ चोरी, कुशील (मैथुन) परिग्रह इन पांच पापों का मन, वचन काय, से तथा कृत, कारित, अनुमोदना से त्याग करता हैं उसको महाव्रत कहते हैं। प्रमाद और द्वेष व संक्लेश

परिणामों का त्याग करना समिति है सम्यग्योगों का निग्रह करना गुप्ति है।

द्रव्य प्राण दश प्रकार के होते हैं पांच इन्द्रिय प्राण, मन-बल, वचन, बल, काय बल, आयु श्वासोच्छ्वास ये द्रव्य प्राण हैं। ज्ञान दर्शनोपयोग रूप जो भाव प्राण होते हैं इनको जान-कर इनकी विराधना नहीं करना। तथा एकेन्द्रिय पृथ्वी काय, जल काय, वायु काय, अग्नि काय, वनस्पति काय, साधारण प्रत्येक प्रतिष्ठित अप्रतिष्ठित प्रकार से पांच स्थावर जीवबादर व सूक्ष्म तथा पर्याप्त, अपर्याप्त, लब्ध पर्याप्त भेद वाले होते हैं। दो इन्द्रिय,तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रियइन को विकलत्रय कहते हैं इनके भी पर्याप्त, अपर्याप्त, लब्ध पर्याप्त ऐसे तीन भेद हैं। पंचेन्द्रिय जीव दो प्रकार के हैं सैनी असैनी पर्याप्त अपर्याप्त लब्ध पर्याप्त क्षुद्र भव के भेदों को जानकर। चार गति वाले जीवों को जान-कर उनके प्राणों की विराधना नहीं करता है उनको मन, वचन, काय, कृत, कारित अनुमोदना से अभय दान देता है वही भव्य जीव व्रती है। जो सब देश सब कालों में एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय प्राणियों की विराधना नहीं करता वह दयावान भव्य जीव संयमी महाव्रत धारी है। तथा अहिंसा महाव्रत का धारी है।

हिंसा तीनप्रकार से होती है एक संरम्भ दूसरी संमारम्भ तीसरी आरम्भ। मन, वचन, काय से करना, कराना करते हुए का अनु-मोन करना और क्रोध के वशीभूत होकर करना। मान के वशीभूत व माया के वशीभूत लोभ के वशीभूत होकर करना इस प्रकार सब का परस्पर गुणा करने पर हिंसा के १०८ भेद हो जाते हैं ३×३×३×४=१०८ भेद होते हैं। इन भेदों को जानकर मन, वचन, काय, कृत, कारित अनुमोदना से हिंसा रूप एकेन्द्रिय से लेकर पचेन्द्रिय जीवों की रक्षा करता है, वि

मैत्री भाव धारण कर अभयदान देता है वह अहिंसा महाव्रत का धारी है।

जो मिथ्या भाषण भंड, वचन हास्य से तथा भय से व कपट भय युक्त वचन अथवा लोभ कषाय के वशीभूत वचन तथा अश्लील (मिथ्या वचन) वचनादि का मन से, वचन से, काय से, कृत कारित, अनुमोदना से व क्रोध मान माया लोभ कषाय के वशीभूत होकर भी नहीं बोलता है न अन्य को बोलने की प्रेरणा ही करता है व बोलते हुए की अनुमोदना नहीं करता है वह भव्य महाव्रत धारी होता है।

वचनों से जीव घात होने की भी संभावना है। जैसे किसी की गुप्त वार्ता को जानकर उसकी गुप्त बात को बाहर निकालने पर अपनी निन्दा समझ कर अपने प्राणों को नाश कर डालता है। झूठे दस्तावेज व झूठी (साक्षी) गवाही नहीं देना चाहिये। जाने तथा बिना जाने दोषों को कभी भी नहीं कहना चाहिये। ऐसा सत्य भाषण भी नहीं करना चाहिये कि जिससे अन्य प्राणियों का विनाश हो व युद्ध होने लग जावें वैर बढ़े और प्रेम नष्ट हो। और तिरस्कार व निन्दा का पात्र बने। इन कहे हुए वचनों का मन, वचन, काय, कृत, कारित और अनुमोदना से त्याग करता है उसके सत्य महाव्रत नियम से होता है।

कोई अपनी वस्तु को रखकर भूल गया या प्रमाद से मार्ग में गिर गई, अथवा मालिक के बिना दी हुई वस्तु को ग्रहण नहीं करना, दूसरे को भी लेने के लिए प्रेरित नहीं करना, तथा उठाते हुए व लेते हुए की प्रशंसा नहीं करना। मन, वचन, काय से पर पदार्थों का त्याग करना यह अचौर्य व्रत है।

ग्राम, नगर, वन, उपवन, उद्यान, मार्ग, तड़ाग, वापी, करवट इत्यादि स्थानों में छोटी बड़ी अधिक मूल्यवान व कम मूल्यवान

सुवर्ण, चांदी, धन, धान्य, द्विपद, चतुस्पद, परिग्रह, पुस्तकादि, रुपया, नोट, वस्त्र, आभूषण यदि पड़े हुए दिखाई देवें तो भी उनकी तरफ दृष्टि नहीं डालना अथवा ग्रहण नहीं करना यह आचौर्य व्रत है। कम देना, अधिक लेना, टैक्स नहीं देना, कम दाम की वस्तु को अधिक दाम की वस्तुओं में मिला देना, कुछ कहना उसके वदले अन्य दे देना। चोरी करना तथा चोरी करके लाई गई वस्तु को कम कीमत में खरीद लेना तथा छल-कर दूसरे के द्रव्य का अपहरण करना तथा रक्खी हुई धरोहर को दवा लेना, नहीं देना, घर फोड़ कर चोरी करना व डाका डालना, जेव काटना ये अनेक प्रकार चोरी के हैं। इसलिए इन चोरी के अनेक भेदों को जानकर मन, वचन, काय व कृत, कारित अनुमोदना से त्याग करना यह अचौर्य महाव्रत है।

देवांगना मनुष्यणी त्रिर्यञ्च स्त्री और पाषाण स्त्री, चित्र स्त्री, भीत आदि पर निकाला गया स्त्री का चित्र व स्व स्त्री, अन्य स्त्री इत्यादि के साथ जो मैथुन का त्याग मन, वचन, काय से करता है। वह ब्रह्मचर्य व्रत का धारी है।

भावार्थ—जो भव्य स्त्री के शरीर को मलों का एक घट भरा हुआ जानकर उनकी ओर दृष्टि नहीं डालता है। न पूर्व में स्त्रियों के साथ किये गये भोग विलासों का ही चिन्तवन करता है। स्त्रियों के गीत, वादित्र व नृत्य स्त्रियों के हाव भाव रूप लावण्यता के ऊपर दृष्टि नहीं डालता है, न कामोत्पा-दक पदार्थों का ही सेवन करता है। शरीर का भी संस्कार नहीं करता है, रोचक पदार्थों का सेवन भी नहीं करता वह भव्य ब्रह्मचर्य व्रत का धारी है। चित्र, पाषाण, व लकड़ी या माटी व अन्य प्रकार से वनी हुई हो यह अचेतन है देवांगना देवी मनुष्यणी व त्रिर्यञ्चणी इस प्रकार स्त्रियां चार प्रकार की

हैं। इन चार प्रकार की स्त्रियों के राग भाव से जो अंग, उपांग तथा उनकी चाल चलन व मुख भोंह केश इत्यादि के ऊपर दृष्टि डालता है वह ब्रह्मचर्य का धारी नहीं है। जो बड़ी स्त्रियों को माता के समान, वय वाली को बहन के समान व लघुवय वाली स्त्री को छोटी बहिन व पुत्री के समान देखता है इस प्रकार सब प्रकार की स्त्रियों के साथ भोग, उपभोग का व हास्यादि का मन, वचन, काय कृतकारित अनुमोदना से जो त्याग करता है, उसके ब्रह्मचर्य व्रत होता है, इस व्रत का निर्दोष पालन करना चारित्र विनय है।

अभ्यन्तर परिग्रह १४ प्रकार का है बाह्य परिग्रह १० प्रकार का है अभ्यन्तर परिग्रह क्रोध, मान, माया, लोभ मिथ्यात्व हास्य रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्री वेद, नपुंसक वेद, पुरुष वेद इस प्रकार भेद हैं। तथा बाह्य परिग्रह क्षेत्र, वास्तु मकान दुकान, सोना, चांदी, गाय भैंस, हाथी, घोड़ा, ऊँट, बकरी इत्यादि धन है। ज्वार, बाजरा, चना, मटर, गेहूं, जौ इत्यादि धान्य है। सेवक, नौकर, नौकरानी, मुनीम तथा अपने साथ रहने वाले स्त्री पुत्र, पुत्री, माता, पिता भाई, बहन इत्यादि। कोट कमीज. धोती, दुपट्टा, पाग, पगड़ी, साड़ी, लंहगा, सलूखा, खाट, पंलग, चटाई, गद्दा, दरी, सिराहना तथा यह अपना शरीर यह भी एक प्रकार का परिग्रह ही है इसमें भी मूर्छा भाव नहीं रखना, इत्यादि परिग्रह है। थाली, लोटा, कुम्भ, कलश, परात, कटोरी. पाषाण, पट्टिका इत्यादि यह बाह्याभ्यन्तर परिग्रह के भेद संक्षेप से कहे है वैसे अनेक प्रकार का परिग्रह आगम में कहा है। जो चेतन (सजीव) अचेतन (जीव रहित) इस प्रकार परिग्रह दो प्रकार का है।

चेतन—

चेतन परिग्रह स्त्री, पुत्र, मित्र, भाई, पुत्र पुत्री, मुनीम, माता,

है। अचेतन परिग्रह मकान, घर, दुकान, किला, सोना, चांदी, तांबा, पीतल, लोहा, हीरा, मोती, पन्ना, पुखराज, नीलम, नील-मणि, लोहित, लोहितमणि, वैडूर्य, वैडूर्यमणि, शंख प्रवाल गोमेद सीप व ग्रह में उपयोग आने वाले लकड़ी के वस्तु व माटी के वस्तु कुम्भ, सराव, कुलहड़, थाली, लोटा, कढ़ाई, मोटर साइकिल, वायुयान इत्यादि परिग्रह है। कुर्ता, कमीज, कोट, पगड़ी, साफा, धोती, दुपट्टा, साड़ी, लंहगा, लूगरा, बिछौना, ओढ़ना इत्यादि तथा हार गले बंद, करधनी, कण्डा, लड़, खगवारी, कड़े, पायजेब, पैंजन दस्ते कर्ण फूल गुर्दा गठिया हथ शंकर ठुसी मोहन माला मटर माला, चूड़ा, चूड़ी, बरा, मुकुट इत्यादि अचेतन परिग्रह के अनेक भेद हैं। सचित्ताचित नगर, राज्य देश, ग्राम, पट्टण ये चेतनाचेतन के भेद हैं। तथा आभूषण व वस्त्रों से सुसज्जित स्त्री पुत्र माता-पिता इत्यादि चेतनाचेतन परिग्रह हैं इसके भी अनेक भेद हैं इस प्रकार परिग्रहों के भेदों को जानकर मूर्च्छा भाव का मन से, वचन से, काय से व कृतकारित अनुमोदना से इन परिग्रहों का सर्वथा त्याग करता है वह अपरिग्रह महाव्रत का धारी है। जो इन परिग्रहों की मर्यादा रख कर शेष का मन, वचन, काय से त्याग करता है वह एक देश परिग्रह का त्यागी है। इस व्रत को निरतिचार पालन करने वाले को चारित्र विनय होती है।

सूर्य के उदय होने पर गमन प्रासुक मार्ग से करना योग्य है। जिस मार्ग से घोड़ा हाथी गाय भैंस या मनुष्य निकल गये हैं या सूर्य के आताप से सूख गया है उस मार्ग से गमन करना। गमन करते समय चार दिशा व चार विदिशा उर्ध्व व अधः न देखते हुए आगे की चार हाथ भूमि को अच्छी तरह देख शोध कर गमन करना यह ईर्या समिति है। चलते समय पूर्व को चलना

देखना उत्तर दिशा को चलना, देखना पश्चिम अथवा पूर्व की तरफ दौड़ लगाना ऊपर को मुंह कर चलना व नीचे को मुख कर चलना व दृष्टि को इधर उधर चलाते हुए मार्ग में चलने से ईर्या समिति नहीं होती, जब इर्या समिति नहीं होगी प्राण भूत जीवों की विराधना होने की संभावना होगी इसलिए ईर्या समिति पूर्वक ही गमन करना चाहिये। ईर्या समिति पूर्वक गमन करने पर चारित्र विनय होता है। इसमें श्रावक का दिग्व्रत भी आ जाता है जिसने दिशाओं की सीमा निश्चय कर लिया है वह दिशा विदिशा नीचा व ऊँचा स्थान के लिए गमन नहीं करता। उसका दिग्व्रत पालन होता है। तथा त्रस घात से भी बच जाता है यह देश व्रत में भी सम्मिलित हो जाता है। इस प्रकार विधि पूर्वक गमन करने से चारित्र विनय होता है।

वह अश्लील वचन मिथ्याभास नहींकरता है न कठोर वचन अथवा गाली गलोज करता है। जिसमें जीवों की बहु विराधना होने की संभावना है ऐसे पांच शून्य खेती करने का उपदेश देना व भट्टी में ईट व चूना इस प्रकार पकाया जाता है ऐसे आरम्भ वचन व जिस उपदेश मे त्रस स्थावर जीवों का विनाश होने की संभावना हो ऐसा वचन नहीं बोलता है। दूसरों के सत्य अथवा असत्य वचनों को एक से सुन दूसरे को कहने मात्र से कलह उत्पन्न हो जाये ऐसे पैशून्य वचन नहीं बोलता है। द्वेष बढ़ाने वाले निष्ठुर बिना प्रयोजन राग द्वेप व कषाय संयुक्त वचन बोलना, नीच खोटे जिन वचनों को सुनकर दूसरे जन निन्दा करें ऐसे वचनों को कुत्सित वचन कहते हैं। जिस भाषा के बोलने से जीवों का प्राग घात हो जाये ऐसे वचनों का बोलना हिंसा वचन है। सब दिन कुछ न कुछ सत्य असत्य शुभ अथवा

अशुभ हिताहित के विचार से शून्य वचन बोलते रहना यह अमित वचन है जिस वचन के सुनने मात्र से दूसरों को क्रोध उत्पन्न हो जावे व द्वेष वैर बढ़ जावे ऐसे वचनों को क्रोध द्वेप वर्धिनी भाषा कहते हैं। जिस वचन से कोई किसी के कान नाक छेदन करे वह छेदनी भापा है । जिस वचन को सुनकर दूसरे जीवों को रस्सी व सांकल, वृक्ष की छाल वस्त्रादि से हाथ पैर व गर्दन बांध दे यह बंधन वचन है। जिस भापा के सुनने मात्र से कोई दूसरे प्राणियों का वध कर डाले ऐसे वचन को पर वध भाषा कहते हैं। जिन वचनों को सुनते ही दूसरे के हृदय में वाण की तरह चुभ जावे व साल जावे ऐसे वचन को मर्म भेदन वचन कहते हैं। मन, वचन, काय की खोटी चेष्टा करते हुए व हास्य सहित वैर बढ़ा लेने वाले वचनों का बोलना यह दुष्ट वचन हैं। दूसरों की निन्दा मय वचन बोलना जिस वचन के सुनने मे दूसरों को ज्ञात हो कि मेरो निन्दा की जा रही है ऐसे वचन का बोलना परनिन्दा भाषा है ऐसे वचनों को कभी नहीं बोलना चाहिये। इन वचनों का मन वचन काय कृत कारित अनुमोदना पूर्वक त्याग करने पर हीं भाषा समिति होती है।

अमित के स्थान पर मित (थोड़ा) बोलना स्व पर का जिस भाषा के बोलने पर कल्याण हो व संपूर्ण जीवों को प्रिय लगे तथा मिथ्यात्व रूप अंधकार के नष्ट करने में जो सूर्य के समान हों ऐसे शुभ सुंदर वचन क्रोध, मान, माया, लोभ रहित वचन बोलना ही भाषा समिति है।

इस प्रकार जो भव्य भापा समिति के स्वरूप को जानकर कुवचनों का त्याग करता है उसके ही चारित्र विनय होती है।

उद्गम के सोलह भेद हैं तथा उत्पादन दोष के सोलह भेद

हैं उनमें से उत्पादन दोष गृहस्थ के आधीन है और उद्गम दोष साधु के आधीन है। चोदह मल हैं जैसे रक्त, हड्डी, मांस, चर्म, बाल, पीप, मृतकशरीर, दोईन्द्रिय, तीनइन्द्रिय, चार इन्द्रिय, पांच इन्द्रिय व मुर्दा को पर दृष्टि व जीव का मरण हो जाना सूखा अथवा गोला चर्ममय मांस व मांसमय चर्म, नाक, कफ, मल, विष्ठा जानकर की बीट व अपने शरीर से निकलने वाले रक्त, मांस पीप, गू, मूत्र कफ व सिंघाण मल चौदह प्रकार के कहे गये हैं इन ४६ दोषों को टाल कर भोजन ग्रहण करना ऐसी ऐषणा समिति साधुओं को आचार्योंने कही है। अपने निमित्त कहकर भोजन बनवाना उस और खाने को उदष्टि कहते हैं। सुन्दर अपने मन के योग्य अहार मिलने पर उस भोजन में आसक्त होना व पुनः वहीं उसही भोज्य पदार्थ को ग्रहण करना यह अति गृद्धता आसक्तता है। जिसके यहां आहार करना हो उसकी पहले प्रशंसा करना कि तुमतो बड़े दाता हो तुम्हारे यहां तो हमेशा ही मुनियों को आहार दिया ही जाता था, आप बड़े भाग्यवान हैं, आपको धन्य है, आप ही दानवीर हैं, आप ही सब श्रावकों में श्रेष्ठ हैं, इस प्रकार कह कर वहीं पर भोजन करना यह पूर्व कर्म है। इसी प्रकार आहार करने के पीछे गृहस्थ दाता की प्रशंसा करना यह पश्चात कर्म है। बच्चों को खिलाना, स्नान करवाना, शृंगार करना व कुछ अन्य क्रिया करना व चूल्हा जलवाना पानी भरवाने की आज्ञा देना इत्यादि अध कर्म हैं। क्रीत—बाजार या दुकान से खरीद कर मुनियों के लिये देना। एक पात्र से परिवर्तन कर व एक घर बनाया और दूसरे घर में रख कर देना यह परिवर्तन है। निर्देश—अमुक साधु आये हुए हैं उनका आहार का काल हो गया है जल्दी आहार की तैयारी करो। दूसरे ग्राम व नगर से लाकर समाचार देना और वहीं

आहार करना यह दूत दोष है। जो भैरव, यक्ष, क्षेत्रपाल व चक्रेश्वरी पुद्मावती आदि देवी देवताओं के निमित्त वना हुआ हो ऐसे आहार ग्रहण करना वलिदोष है। पाखण्डी, मिथ्यादृष्टि के निमित्त वनाया हुआ भोज किया गया है उसको मुनियों के लिये दिया गया हो यह प्राभृत नाम का दोष है। सचित्ताचित्त मिली हुई वस्तुओं का भोजन करना जैसे भात, रोटी वनाई व कमल के पत्ते पर रख दा और ढक भी दी यह सचित्ताचित्त है। आगम में अनेक दोष कहे गये हैं उन सव दोषों को भली प्रकार जानकर त्याग करता है उस ही साधु के (सज्जन के) ऐषणा समिति होती है।

सधूम—भोजन करते जाना और भोजन से ग्लानि करना कि यह ऐसा भोजन मैंने कभी नहीं खाया वह भी आज मुझे खाना पड़ रहा है। और खाते भी जाना ग्लानि भी करना यह धूम दोष है' इन सव मल उद्गम उत्पादन व अन्य ऐषणा समिति के भेदों को जानकर मन, वचन, काय से प्रमाद का त्याग कर ईर्या समिति पूर्वक इस मार्ग से गमन करना कि जिस मार्ग में किसी जीव को कोई भी प्रकार की वाधा न पहुँचे। तथा जहां गाय, भैंस, वैल, वकरी, घोड़ा, गंर्धव, आदि जीव वैठे हों या खड़े हों या वंधन में हो ऐसे स्थान में होकर नहीं जाना चाहिये क्योंकि उनके मन में भय या आकुलता होगी जिससे वे अपने स्थान को छोड़कर इधर-उधर भागने लग जायेंगे जिससे अनेक जीवों की विराधना होगी। अपनी त्यागी हुई वस्तुओं का ध्यान रखकर प्रमाण पूर्वक संशोधन कर दाता के द्वारा दी हुई वस्तु का ग्रहण करना व इधर-उधर दृष्टि को न फेंकते हुए एकाग्र चित्त से शोध ग्रहण करना. यह ऐषणा समिति है। इसको जो निर्दोष पालन करता है उसके ही चारित्र विनय होती है तथा

आगे कहे गये ऐषणा समिति के दोषों का मन, वचन, काय से त्याग करता है वही चारित्र विनय है।

बिछौना, पाट, तख्त, शिलापट्टिका, चटाई व घास आदि व पुस्तक शास्त्र व कमण्डल और शरीर से बैठते समय, सोते समय, करवट लेते समय व हाथ पैर फैलाते समय, जहां पर बैठना हो या सोना हो व शास्त्र, कमण्डल इत्यादि रखना हो उसको भली प्रकार देखकर व पिच्छिका से मार्जन करके ही ग्रहण करना व रखना चाहिये। क्योंकि सब जगह त्रस जीवों का संचार सतत बना ही रहता है। यदि प्रमाद पूर्वक कोई वस्तु रक्खी जाय तो अवश्य वहां विचरने वाले जीवों की विराधना हो सकेगी। जिससे जीवों का बिना विनाश होनेपर भी जीव हिंसा का भागीदार बनना ही पड़ेगा। इसलिए जो प्रमाद का त्याग कर वस्तुओं को उठाते समय, रखते समय, संकोच व विस्तार करते समय भली प्रकार से देख, शोधकर, पिच्छिका से झाड़कर ग्रहण करते हैं व रखते हैं उनको ही आदान निक्षेपण समिति होती है इस प्रकार करने पर ही चारित्र विनय होता है।

जहां कहीं पर भी बैठना हो अथवा सोना हो व हाथ पैर फैलना या समेटना हो, उस स्थान को विधि पूर्वक पीछी से स्वच्छ करने के पीछे ही फैलाना या संकुचित करना योग्य है। नाक, थूक आदि भी फैंकना हो तो निर्जन स्थान देख झाड़कर रखना चाहिये। रखने के पश्चात् उस पर रज डालकर आच्छादित कर देना चाहिये क्योंकि मक्खी, मच्छर उस पर बैठ जायेंगे और लिपट जायेंगे मरण को प्राप्त होंगे।

यदि रात्रि का समय हो तो दिन में देखे हुए स्वच्छ निर्जन स्थान में जाकर भी अपने हाथ के पृष्ठ भाग को जमीन से लगाकर भली प्रकार देख लेना चाहिये, यदि कोई त्रसकायक जीव

विचरता होगा तो वह हाथ से मालूम हो जायगा। इस प्रकार रात्रि में शौचादि क्रिया करनी व पिच्छिका से वस्त्र से मार्जन कर शौच जाना चाहिये। रात्रि, वर्षा काल, व मेघों के कारण अंधकार छाया हुआ है ऐसी अवस्था प्राप्त होने पर भी प्रमाद छोड़कर कही हुई क्रिया करना ही चाहिए इस प्रकार उत्सर्ग समिति का विधान किया गया है। अधिक जानने के लिए भगवती आराधना या मूलाचार आदि ग्रन्थों से जान लेना चाहिए इन नियमों के अनुसार जो आचरण करता है उसके ही चारित्र विनय होती है।

आहार, मैथुन, भय और परिग्रह इन चार संज्ञाओं का त्याग तथा आर्तरौद्र ध्यानों का त्याग व रागद्वेष रूप अशुभ भाव व भावनाओं का त्याग कर शुभ भाव व भावनाओं में प्रवृत्ति का होना ही मनोगुप्ति है। तथा माया, मिथ्या, निदान व तीनों शल्यों का परिहार कर स्वात्म गुणों में रुचि होना यह मनोगुप्ति है।

, राज्य व राजा सम्बन्धी कथा करना कि अमुक राजा ने अमुक राजा की सेना को मार डाला, अमुक ने अमुक राजा को बांध लिया यह राज कथा है। स्त्री के हाव, भाव, रूप, रंग, रेखा, लक्षण, भोग विलास व उसके साथ रति विला व चेहरा का हलन चलन अंग उपांगों का विचार करना यह स्त्री कथा है इसके करने से मन में विकार व बैर विरोध की उत्पत्ति होती है। चोरी और चोरों की कथा करना व भोजन कथा करना। जिन कथाओं के करने से रागद्वेष की वृद्धि होती हो ऐसी कथायें नहीं करना। पाखण्डी अज्ञानियों के तप की प्रशंसा करना व नीच दुराचारी लोगों की व व्यसनों में आसक्त जनों की कथा करना ये सब वचन गुप्ति को दूषित करने वाले हैं।

अथवा आत्म प्रदेषों में चंचलता उत्पन्न करने वाली जितनी कथायें हैं उनका त्याग करना ही वचन गुप्ति है। जो आत्मा को दुर्भावनाओं से बचाकर शुभ व शुद्ध भावों में स्थित करती है उनको गुप्ति कहते हैं।

काय की खोटी क्रियाओं का त्याग करना चित्र कर्म, पोत कर्म, और काष्ठ कर्म लेप कर्मादि में शरीर प्रवृत्ति का न होना तथा शरीर की कुचेष्टा का होना व फैलना व सिकोड़ना इत्यादि का त्याग कर आत्मा के सन्मुख होना इस प्रकार काय गुप्ति का स्वरूप कहा विशेष आगम से जानना।

जो बाह्य छः प्रकार व अतरंग छः प्रकार का सम्यक्त्व भावना पूर्वक तप करते हैं। 'तथा अंतरंग छः प्रकार व वाह्य छः प्रकार के भेद से दो प्रकार व बारह प्रकार का है उस तप के तपने वालों को देखकर मन, वचन, काय में अत्यन्त आनंदित होना व अपने भावों में भी यह भावना करना कि हमको ऐसा सौभाग्य कब उपलब्ध होगा जब हम भी अतंरंग व वहिरंग तपों का आचरण करेंगे। ये बड़े भाग्यवान हैं जो इतनी कठोर तपस्या को करते हुए भी इनके मन में रंचमात्र भी खेद नहीं है। जिनका शरीर भी देखो कैसा दुबला जीर्ण हो गया है फिर भी इनके मुख पर ग्लानि का रंग मात्र भी नहीं है। उन तपस्वियों की सेवा करने की भावना करना व सेवा करना यह तप विनय है।

उपचार विनय व्यवहार धर्म है अपने से बड़े माता-पिता दादा-दादी व अन्य सबकी विनय करना यह उपचार विनय है।

शीलव्रत

जिन कारणों से अपने आत्मिक गुणों का नित्य ही विनाश होता है उन सब दोषों का त्याग करना शील व्रत आत्मा में ही प्राप्त होता है। शील कहिये आत्मा का स्वभाव उस आत्म स्वभाव से जो आत्मा को विपरीतता में ले जाते हैं वे मिथ्या-दर्शन व कषाय हैं तथा असंयम भाव व संक्लिश्ट परिणाम हैं इन सब का त्याग कर एक शुद्ध चेतन स्वरूप आत्मा की प्राप्ति ही शील है अथवा अनन्त दर्शन ज्ञान ज्ञायक सम्यक्त्व सुख, दान, लाभ, भोग, उपभोग ये आत्मा के विशेष शील गुण हैं।

यह मन मद युक्त हाथी के समान है क्योंकि बिना अंकुश का हाथी और बिना लगाम का घोड़ा सवार को कहीं भी खड्डे में पटक देगा, इसी प्रकार यह मन मदोमन्त हाथी की तरह यत्र-तत्र भ्रमण करता है। अथवा दिन रात पंचेन्द्रियों की तरफ दौड़ लगाता ही रहता है। और न जाने किस समय यह आत्मा रूपी सवार को नरक निगोद में ले जाकर पटक देगा। इसलिये मन के ऊपर संयम रूपी अंकुश लगाकर स्वच्छन्द न होने पावे ऐसा प्रयत्न करो।

शील सहित अथवा सम्यक्त्व सहित जो दिया गया अतिथियों को दान तथा सकल विकल संयम का धारण करना महाव्रत व देशव्रतों का पालन करना व बारह प्रकार का तप करना ये सब मोक्ष के कारण होते हैं। शील (भाव) रहित किये

गये दान, तप, संयम, व्रत, यम, नियम सब ही दीर्घ संसार के कारण है।

शील आत्मा का स्वभाव है उस शील स्वभाव के अभाव में किये गये जप, तप, दान, दक्षिणा, पूजा उत्सवादी सब ही संसार वृद्धि के कारण हैं। यदि भाव सहित हों तो वे ही मुक्ति के कारण हैं।

जैसे माता के द्वारा पुत्र की रक्षा निष्प्रमाद रूप से की जाती है। वह बच्चे की होने वाली सब अवस्थाओं का विचार कर उसको भोजन पान देती है तथा गीले में से उठाकर सूखे में सुलाती है। उसी प्रकार आत्मा के गुण संयमादि हैं उनकी रक्षा करने वाली ये पांच समिति तथा तीन गुप्ति हैं। ये समितियां और गुप्तियां आत्मा के गुणों की परिपूर्ण रूप से रक्षा करती हैं।

(आत्मा को आत्मा में देखने) मन की, वचन की, काय की एकाग्रता पूर्वक आत्मा को आत्मा में स्थित होकर देख! हे भव्य उस आत्मा का देख और जान जो आत्मा सब धर्मों का पात्र है। इस आत्मा में अनन्त धर्म परस्पर विरोधी होते हुए निवास करते हैं। वह आत्मा ही शीलवान है तथा आत्मा शील है ऐसा विचार कर देखें। आत्मानुभूति ही शील है यही शील अन्नत धर्म वाला हैं।

जो पुद्गल द्रव्य है वह अपने रस, गंध, रूप, स्पर्श का त्याग नहीं करती अन्य शील रूप नहीं होती। शील है वह भी अपने दर्शन ज्ञान रूप साकार व निराकार उपयोग को नहीं छोड़ती। पुद्गल कर्म है। वे पुद्गल रूप ही हैं, वे चेतन स्वरूप नहीं हुए, न चेतन स्वरूप शील है, वे अचेतन स्वरूप ही हुए। यदि ये दोनों अपने स्वरूप व गुण धर्मों को छोड़ देते तो महासंकर नाम का

दोष उत्पन्न हो जायगा। और द्रव्यों की स्थिति ही नष्ट हो जायेंगी। इस तरह इनका विभाग स्वभाव को विभाजन करता है। एक द्रव्य में दूसरी द्रव्य का अन्यन्ता भाव है एक द्रव्य के विशेप गुण दूसरे द्रव्य में नहीं होते और दूसरे द्रव्य के विशेप गुण अन्य द्रव्यों में नहीं रह सकते। वे अपने-अपने द्रव्य के ही आश्रित रहते हैं। इनकी ऐसी व्यवस्था है।

जो आत्मा के साथ वंध कहा जाता है वह वंध संयोग से व्यवहार नय से ही कहा गया है। यह मेरी स्त्री है यह पुत्र है यह मामा, दादा, चाचा, इत्यादि की कल्पना मात्र ही है। ये भी सव परिग्रह ही हैं तथा वस्त्र मात्र परिग्रह को ही कोई कहे कि यही परिग्रह है यह भी संयोग रूप ही है काल पाकर विनाश को प्राप्त होगा। और अपने-अपने भावानुसार गमन कर जायेगे। इनके विषय में राग करके पर चेतन-अचेतन पदार्थों के संयोग से अपने मान, राग, द्वेष, मोह, मत्सर चिन्ता, क्रोध मान माया लोभ तथा पंचेन्द्रियों के विपय में आसक्त होकर अपने राग भाव से पुद्गल वर्गणाओं को अपनी तरफ चारों ओर से खींचता है यही आस्रव है। जिन पुद्गलों को समय प्रतिबद्ध रूप से आस्रवित किया है वे ही पुद्गल कर्म रूप से परणित होकर आत्मा के साथ दूध, पानी, दही गुण की तरह एक मेक हो गये यह वंध है। और जव इनका भाव करता है तव ही हिंसा और आरम्भ होता है तथा यही परिग्रह रूपी वोझा है। इसलिये इस संयोग सम्वन्ध को जान ममत्व भाव न करके अपने शील स्वभाव का ही अवलम्बन कर यही श्रेयस्कर है।

भगवान वीतराग के द्वारा शास्त्रों में उपदेश दिया है कि जितने द्रव्य हैं वे अपने-अपने गुण और पर्यायों में परिणमन प्रति समय कर रहे हैं। उसी से यह लोक तथा तीनों लोक

शोभा को पा रहे हैं। उन परिणमन करते हुए द्रव्यों में अन्य कोई परिणमाने वाला कारण नहीं है। भूत, वर्तमान व भविष्य काल में एक द्रव्य, दूसरे द्रव्य रूप में परिणमन नहीं करता दूसरे द्रव्य अन्य द्रव्य रूप में परिणमन नहीं होते हैं। सब द्रव्य यद्यपि एक आकाश प्रदेशमें निवास करते हैं फिर भी अपने-अपने स्वभाव को नहीं छोड़ते। वे अपने-अपने विशेष गुणों में ही स्थित रहते हैं वे सुवर्ण के समान स्थित रहते हैं जिस प्रकार सोना कीचड़ में डाल दिया जाय तो वह कीचड़ रूप नहीं होता, यदि उसको अन्य चांदी आदि में मिला दिया जाय तो भी वह अपने पीलेपन विशेष गुण को नहीं, छोड़ता और मिलकर चांदी रूप भी नहीं होता। यदि चांदी रूप हो जावे तो सोना का नाम ही समाप्त हो जावे। इसी प्रकार द्रव्यों की व्यवस्था है। जिस प्रकार जहां उजाला रहता है वहां अंधेरा निवास नहीं करता जहां उजाले का अभाव है वहीं अंधेरा स्थिर रहता है। इसी प्रकार आत्मा अपने ज्ञान दर्शनपयोग रूप चेतना गुण को छोड़ कर अचेतन पुद्गल के रूप रस, गंध, स्पर्श रूप नहीं होता है। चेतना है वह चेतन आत्मा में रहती है वर्णादिक हैं वे पुद्गलिक हैं वे पुद्गल द्रव्य में ही रहते हैं। यही द्रव्यों का शील स्वभाव कहा गया है। यदि ऐसा न माना जाय तो द्रव्यों की व्यवस्था ही नहीं बन सकेगी। और सर्व द्रव्यों के अभाव का प्रसंग आ जायेगा।

जिसने इन पंचेन्द्रियों के विषयों को विष पकवान के समान जान कर संयमी हो मोह राग का त्याग करके जिस समय संयम और तप में लवलीन होकर दुःख व सुख में समता भाव धारण कर अपने आत्मा में अपने शील स्वभाव को प्राप्त करे तब एक ही शील स्वभाव आत्मा ही दृष्टिगोचर होता है, अन्य कुछ भी

दिखाई नहीं देता है। इसको शुद्धोपयोग भी कहते हैं। व्रत पांच प्रकार के अहिंसादि रूप हैं। ईर्यादि समिति पांच हैं। मनोगुप्ति आदि तीन हैं ये सब मेरे आत्मा में विद्यमान हैं और दर्शन, ज्ञान, चारित्र भी आत्मा में ही विद्यमान है आत्मा इन गुणों को छोड़कर अन्य रूप नहीं। उत्तमक्षमादि जो दस धर्म कहे हैं वे भी मेरे आत्मा में ही हैं इसलिये आत्मा ही शील रूप है।

आत्मा का स्वभाव ज्ञानोपयोग, दर्शनपयोग है उस आत्मा के ही ये उत्तमक्षमादि दस धर्म हैं ये दस धर्म अपने चेतन गुण गुणी रूप हैं। ये अभिन्न अखण्ड टंकोत्कीर्ण है वस वही शीलवान है।

बारह व्रत

दिग्व्रत—दस दिशाओं की मर्यादा करना अथवा सीमा बांध लेना।

देशव्रत—ग्राम, गली इत्यादि की मर्यादा करना कि आज अमुक बाजार व गली तक जाऊँगा।

अनर्थदण्ड व्रत-अनर्थ दण्ड के पांच भेद हैं। हिंसोपदेश, हिंसा दान, दुःश्रुती, अपद्ध्यान और प्रमाद चर्या। इनका स्वरूप आगे कहा है वहां से जिज्ञासुओं को जान लेना चाहिये। भोगोपभोग की मर्यादा व संख्या तय कर लेने से इच्छाओं का व इन्द्रिय विषयों का निरोध हो जाता है।

सामायिक प्रोषधोपवास करना अतिथिसंविभाग ऐसे शिक्षाव्रतों के नाम कहे हैं इनको सप्त शील कहते हैं।

आत्मा ज्ञान स्वरूप है तथा आत्मा शील स्वभाव रूप है यह कहने मात्र में अन्तर दिखाई देता है। विचार करने पर शील और ज्ञानोपयोग में रंच मात्र भी अन्तर नहीं, एक ही हैं। ज्ञान

का दोष नहीं है वह दोष तो पंचेन्द्रियों के विषयों में आसक्त मंदबुद्धि पुरुष का है। यह अज्ञानी मंदबुद्धि पंचेन्द्रियों के विषयों को भोगकर दुखी होता हुआ भी उन भोगों को मन में प्रसन्न होकर पुन: भोगता है। कोई जाने कि ज्ञान से बहुत पदार्थों को ज्ञाने तब विषयों में रंजायमान होता है सो यह ज्ञान का दोष है। यहां आचार्य कहते हैं कि ऐसे मत समझो ज्ञान प्राप्त करके विषयों में रंजायमान होता है यह ज्ञान का दोष नहीं। होनहार खोटा होता है तब बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है। फिर ज्ञान को प्राप्त कर उसके मद में मस्त हो विषय कषायों में आस्क्त हो तो वह द्रोष पुरुष का है ज्ञान का नहीं। ज्ञान का कार्य पदार्थ का जानना है विषयों को भोगना नहीं। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् चारित्र और तप इनके साथ एकता हो तव मोक्ष को प्राप्ति होती है। दर्शन ज्ञान तप इनका सम्यक्त्व भाव सहित आचरण हो तब चारित्र से शुद्ध जीवों को मोक्ष की प्राप्तिं होती है।

भावार्थ—शील स्वभाव को कहते हैं तथा दर्शन और ज्ञान इनको भी शील कहा जाय तो कोई दोष नहीं। आत्मा अनंत गुणों का समुद्र है। इतना जानते हुए भी मोही विषय लंपटी मानी पुरुष यदि विषयों में रम जाय, मग्न हो तो क्या यह ज्ञान का दोष है? यह दोष मनुष्य का ही है। किसी कविताकार का कहना है यथा मति तथा गति। अंत समय में जीव के जैसे परि-णाम होते हैं वैसी ही गति होती है। विनाश काले विपरीत बुद्धिः। विनाश का समय आता है जव जीव की कुबुद्धि हो जाती है। इस कहावत के अनुसार ही सव पादर्थो का ज्ञान होते हुए भी विषयों की विषयाग्नि में कूदता है और नष्ट हो जाता है। विषयों की लालसा का त्याग कर चार आराधनाओं

का भाव सम्यक्त्व सहित आराधना करता है तब निर्वाण पद को प्राप्त हो जाता है।

पांच आणुव्रत अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, एकदेश तथा परिग्रह परिमाण इन व्रतों का व दिग्व्रत देशव्रत, भोगोपभोग परिमाण अनर्थदण्ड व्रत सामायिक, प्रोपधोपवास, अतिथिसंविभाग इन बारह व्रतों का सम्यक्त्व भाव सहित निरतिचार पालन करना। स्व परहित हो, शुभ भावों से युक्त हो पालन करना। तथा अशुभ भावों का त्याग कर शुभ भावों में प्रवृत्ति करना। जो व्यवहार चारित्र महान है उन महाव्रतों का व ईर्या, भाषा, ऐषणा, आदान निक्षेपण उत्सर्ग समिति तथा मनोगुप्ति, वचन गुप्ति, काय गुप्ति, इनका भाव सहित शुभोपयोग-रूप व्यवहार चारित्र का पालन करना।

जो संसार की वृद्धि के कारण हैं उनका छेदन करने वाला निश्चय सम्यग्चारित्र है उसमें प्रवृत्ति हो तब शुद्धोपयोग, निर्मल आत्मा का प्रकाशक होता है। सम्यक्त्व-जिसमें आत्मरुचि पूर्वक पर से भिन्न आत्मानुभूति है। चारित्र वह है जिसमें आत्म रुचि पूर्वक पर चेतन, अचेतन, राग, द्वेप, मान, माया, क्रोध, लोभ स्पर्शन रसना, घ्राण, चक्षु, करण, मोह मत्सर इत्यादि भावों से भिन्न कर आप अपने में आप ही आचरण करता है। पर भावों से रहित होकर जब स्वानुभव में प्रवृत्ति हो, स्वानुभव में स्थिरता हो तब शुद्धोपयोग रूप हो आत्मा में आप ही आचरण करे तब पर की प्रवृत्ति मिट जावे। यह शुद्धोपयोग ही भव बंधन का नष्ट करने वाला है यह जीव को शुद्ध अवस्था को प्राप्त कर कार्य

रूप केवल ज्ञान है तथा शुद्धात्मा की प्राप्ति का लक्ष्य है। वही कारण है और निर्वाण भी वही है। इस कारण शीलों का कथन संक्षेप से किया विशेष अष्ट पाहुड़ व आगम ग्रन्थों से जान लेना चाहिये।

शील का महात्म्य

शील सब गुणों का भूषण है और अपने आत्म स्वभाव में हमेशा स्थित हो रहा है। उसी प्रकार अपने आत्म स्वभाव में नित्य स्थित ज्ञान भी सब गुणों का भूषण है। आत्मा अनन्त गुणों का समुद्र है और वह शील स्वभाव है। जिस प्रकार शील आत्मा का स्वभाव है उसी प्रकार आत्मा भी स्व स्वभाव ज्ञानादि अनंत गुण से युक्त है। वही आत्मा के संपूर्ण गुणों में भूषण ज्ञान है। इसलिए ज्ञानभूषण आत्मा को ही कहा है वह आत्म स्वभाव में प्रकाशमान हो रहा है।

जो प्रति कार्य में विघ्न उत्पन्न करने वाले दर्शनावर्ण, ज्ञानावर्ण, मोहनीय और अंतराय इन चारों घातिया कर्मों का नाश करा दिया है जिनके ज्ञान में लोक और अलोक विभाग रूप से दिखाई देते हैं। उन श्री सोलहवें तीर्थंकर को मैं नमस्कार करता हूं।

भावार्थ—जिन शान्ति नाथ भगवान ने चक्रवर्ती पद पाकर सब राजाओं को जीत लिया जिससे उनका कोई शत्रु नहीं रहा इससे उन्होंने कामदेव को जीत लिया और कामदेव पद के धारी हुए। तीसरे वे शान्तिनाथ भगवान तीर्थंकर पद के धारी हैं।

दीक्षा ग्रहण कर ध्यानाग्नि के द्वारा घातिया कर्म रूपी जंगल को जला दिया। और जन्म मरणादिक अठारह दोषों से

मुक्त हो जाने से केवली तीर्थंकर हुए। जिनके केवलज्ञान में ऊर्ध्व, मध्य, अधो लोक तथा अलोकाकाश विभाग रूप से दिखाई देने लगे थे इसलिए वे सर्वज्ञ वीतराग हितोपदोशी गुणों से विभूषित हुए ऐसे उन श्री शान्तिनाथ भगवान को मैं भाव शुद्ध कर नमस्कार करता हूँ।

ऐसा कौन पुरुष होगा जो संसार में रहते हुए यह न जानता होगा कि संसार में जितने सुन्दर स्त्री, पुत्र, पौत्रादि हैं वे सब देखते-देखते विनाश होते चले जा रहे हैं। इस संसार में विनाश और उन्नति दोनों ही अनादि काल से चली आ रही है।

जिनका सेवन बहुत काल से कर रहे थे जिनको हम अवि-नाशी मान रहे थे वे धन, गाय, भैंस, हाथी, घोड़ा इत्यादि। धान्य ज्वार, बाजरा, गेहूँ, जो, मटर इत्यादि। राज्य तथा राज लक्ष्मी ऐश्वर्य हैं वे सब जिस प्रकार आकाश में बिजली चमकती है वैसे क्षण मात्र में देखते-देखते नष्ट हो जा जाती है। उसी प्रकार ये सब भी नष्ट होते हुए देखे जाते हैं।

जिस यमराज ने चक्रवर्ती हल के धारण करने वाले बल-राम व अर्ध चक्रवर्ती विष्णु प्रति नारायण देवेन्द्र को भी अपना मुख का ग्रास बना लिया है वे भी इस संसार और वैभव को सुरक्षित नहीं रख सके। जिनके पास चक्र रत्न, दण्ड रत्न, सेनापति इत्यादि महाविभूतियां थी उनकी रक्षा नहीं कर सके वे स्वयं यही काल के ग्रास बन गये फिर हम सरीखे दीन की तो बात ही क्या है। हमारा तो शरीर क्षण में ही काल कव-लित हो जायेगा इसमें कोई संदेह नहीं।

हमारा जो यौवन है जिसके मद में मैं अकड़कर चलता था वह मेरा यौवन पहाड़ से बहने वाली नदी के समान शीघ्र ही निकला जा रहा है। इस यौवन की कोई स्थिरता नहीं। यह

जीवन भी मेघों में चमकने वाली बिजली के समान क्षण भंगुर है। जिन पुत्र, स्त्री, पति, माता, पिता, सगे सम्बन्धी जिनको मैं अपना सर्वस्व मानता था वे भी संयोग से मिले हैं और उनका मुझ से वियोग शीघ्र ही हो जायगा। मेरे सब इष्ट मित्र भी अब दिखाई नहीं देते।

अनिष्ट संयोग रूप दुःख है कहीं परस्पर मारने, ताड़ने छेदने रूप दुःख है। कहीं पराधीनता से भूख, प्यास, शीत उष्णता रूप दुःख है। कहीं अधिक भार लादने व अन्न पान का न मिलने रूप दुःख है। कहीं मानसिक दुःख जिसको दूसरा व्यक्ति जान भी नहीं सकता।

किसी के दुःख बाहर से भी देखे जाते हैं जैसे पुत्र का न होना, धन का होना, इससे दुःखी रहता है। यदि धन और पुत्र होकर मर जाय विनाश को प्राप्त हों तो और भी अत्यन्त दुःख होता है। कोई निर्धन होने के कारण धनवानों की सेवा चाकरी करते हैं और कोई धन की इच्छा कर देश ग्राम कुल स्त्री पुत्रादिकों को छोड़कर परदेश में जाते हैं वहां भी दूसरों की सेवा का कार्य कर उदर में डालकर उच्छिष्ट भी भोजन करते हैं कष्ट सहते हुए धन उपार्जन करते हैं। उपार्जन किये हुए धन की रक्षा करने में दिनों रात लगे रहते हैं कि कोई चोर लुटेरा व पुत्र मित्रादि न खर्च कर दें न ले जावें। ऐसी दुःखमय अवस्था जानकर तीर्थंकर देव उस संसार का त्याग कर जंगल जाकर दीक्षा धारण करते हैं। आचार्य कहते हैं कि जिन तीर्थंकरों को भोगपभोग सामग्री देव स्वर्गों से लाते थे जिसका उपभोग तीर्थंकर भगवान करते थे इतना पुण्य का उदय होते हुए भी सदा साता नहीं रह गई। देखो भरत चक्रवर्ती के चौदह रत्न नौ निधियां थीं उनका पुण्य महा बलवान था जिससे उनकी

३२००० मुकट वद्ध राजा सेवा करते थे वह चक्रवर्ती जब अपने छोटे भाई के द्वारा मन भंग होता जाककर दुःखी होता है। इसी अपार संसार में जिनका पुण्य उदय है उनके भी शाश्वत सुख नहीं है।

उस धर्म का संसारी जीवों को सेवन करना चहिये जो धर्म दुःखों का नाश कर सुख में ले जाकर धरे। जो धर्म स्वर्ग, सुख व मोक्ष सुख को देने वाला हो वह धर्म सम्यक्त्व, संयम और तप है। इहलोक में जहां कहीं किस भी गति में तथा किसी भी योनि में जीवों को सुख नहीं अपितु दुःख ही दुःख देखा जाता है। भूत भविष्य, वर्तमान तीनों कालों में इस जीव के चार संज्ञा का उदय निरंतर बना ही रहता है जिससे यह दुस्साह, दुःखों का भोग करता है। ये संज्ञायें चार हैं आहार, भय,मैथुन, परिग्रह हैं, जिनके ज्वर से तप्तायमान हो रहे हैं। जिससे राग द्वेष इष्ट पदार्थ में राग और अनिष्ट पदार्थ में द्वेष बुद्धि होती है। राग द्वेष रूप मोह की क्रोध, मान, माया, लोभ चार व सोलह कषाय व हास्य रति, अरति,शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्री, पुरुष, नपुंसक, वेद ये चारित्र मोह तथा दर्शन मोह की मिथ्यात्व इनके आधीन हों इनको ही अज्ञानता से अपनी मानकर इनको ही धर्म मानता है यह अज्ञानता ही दुःख का कारण है। इन सब को अज्ञानी अपने मानता है। जो द्वेष कहे गये हैं वही दुःख रूप संसार के विस्तार के हेतु हैं।

संसार अवस्था में जीवों को ऊर्ध्व मध्य तथा अधोलोक में निवास करने वालों को तथा तीन कालों में जीवों को सुख की झलक भी नहीं। दुःखों का अनुभव करते हुए भी रोग शोक भय संज्ञा और कषायों की वृद्धि ही होती है।

संज्ञाओं का भोग करता हुआ दुःख की अनुभूति लेता हुआ

भी हे प्राणी तू उन संज्ञाओं की ही इच्छा करता है। जिनके लिए तू राग और द्वेष कर रहा है। जिनके न मिलने पर तू क्रोध, मान, माया, लोभ, रूप कषायों की वृद्धि कर वैर व निदान कर अनंत संसार के दुखों की वृद्धि की ओर नहीं देखता।

हे भव्य संसार में जितने जीव हैं वे सब चिन्ता रूपी रोग से पीड़ित होते ही रहते हैं। चिन्ता रूपी ज्वर ताप शरीर को अन्दर हो अन्दर धधकती हुई रक्त मांस जला देती है। संसार में सबसे बड़ा दुःख जन्म-मरण और बुढ़ापा रूप है। जीव को सतत भय लगा रहता है किसी को धन हानि का भय किसी को मान हानि का भय, किसी को रोग शरीर में उत्पन्न होने का भय लगा हुआ है। कोई पुत्र के वियोग रूप शोक करता है, किसी के स्त्री के वियोग रूप शोक, किसी के ऋद्धि का क्षय रूप शोक होता है किसी के अनिष्ट पुत्र व स्त्री व माता, पिता, मित्र आदि मिलने से भी शोक उत्पन्न होता है। उस धर्म का सेवन करो जिस धर्म के सेवन करने से संसार भ्रमण का अन्त हो तथा जिस धर्म के सेवन करने से अविनाशी मोक्ष सुख को प्राप्त हो, वह धर्म सम्यक्त्व प्रधान है। यही धर्म शाश्वत रहने वाला है।

हे भव्य यदि दुःखों से मुक्ति चाहता है तो जिनेन्द्र भगवान के पदों की शरण ग्रहण कर उसके द्वारा कहे गये वचनामृत का भली प्रकार से पान कर तू हमेशा अपनी समितियों में सावधान रहकर अनुभव विचार कर पुनः जो धर्म के विपरीत मिथ्यात्व, असंयम का त्याग कर, अपने से भिन्न पदार्थों को जानकर त्याग।

हे भव्य ! उस जिनवाणी का तुम सतत चिन्तवन करो एक

क्षण भी मत विसरो, उस वाणी को अक्षर वाक्य पद स्वर व्यंजन मात्राओं को देख शुद्ध उच्चारण कर बार-बार उसका ध्यान करो, काल के अनुसार पढ़ो। जिन वचन ही संसार के दुःखों से व पाप कर्मों से तुमको बचाकर सन्मार्ग में चलाने वाले हैं पथिक के साथ में जैसे सोटा अर्थात् जिनके पास डण्डा होता है उसके पास दुष्ट घात करने वाले चोर, व्याघ्र, सिंह, आदि कोई भी उसके रास्ते में विघ्न डालने को समर्थ नहीं। इसलिए कुन्द-कुन्द आचार्य ने अष्ट पाहुड़ में भी कहा है कि—

जिस प्रकार धागे सहित सुई विनाश को प्राप्त नहीं हो पाती। प्रकार जिन वचन रूपी धागे में जो पुरोया गया है ऐसा भव्य संसार में चार गतियों में कहीं भी जावे वहां से भी विनाश को नहीं पाता। वह तो सब कर्मों को शीघ्र ही नाश कर देता है। जिनके हृदय में जिन वचन रूपी धागा पुरोया गया है वे कहीं भी रहें वे अपने स्थान को आवश्य ही प्राप्त कर लेते हैं।

यह जिन वचन सब सुगुणों की निधान है (समुद्र है) और जिसने उस वाणी रूपी महा सरिता में स्नान किया है उसके पाप मल सब नष्ट हो गये और जो भव्य उसमें स्नान करेंगे उनके भी पाप मल नष्ट हो जावेंगे। और जो वर्तमान में स्नान करेंगे वे भी पाप मलों से मुक्ति को पाते हैं। जिनवाणी का जिसने अध्ययन किया है वही हेय, त्यागने योग्य, उपदेय ग्रहण करने योग्य वस्तुओं में विवेक करता है। क्या भोग है, क्या उप-भोग करने की वस्तुऐं हैं उनको जानकर अपने में जो वक्रता डालने वाली क्षणभंगुर पर्यायों के भोगोपभोगों को स्वीकार नहीं करता है। वह तो अपने अविनाशी टंकोत्कीर्ण आत्म रस का ही भोगोपभोगी बनता है। सब जगह आठ रस संसारी जीवों को प्राप्त होते हैं उनका ही ये संसारी प्राणी भोगोपभोग करते

चले आ रहे हैं वे रस शृंगाररस, हास्यरस, रौद्ररस, करुणारस, वीररस, भयानकरस, वीभस्तरस, अद्भुतरस इन सब रसों का भोग करते चले आ रहे हैं। जिनको जिनवाणी रूपी गङ्गा मिल गई है वे उसमें डुबकी लगाकर अलौकिक जो कभी भी भोगोपभोग में नहीं आया था उस शान्त रस का ही भोगोपभोग कर प्रसन्न चित्त हो मग्न हो जाते हैं। उनकी दृष्टि लौकिक विनासिक रसों पर नहीं जाती। तब क्या उनकी इन्द्रिय जनित सुख क्या दुःख सब ही पुद्गल की पर्यायें जानने में आ जाती हैं तब हेय जानकर त्याग करता है।

हे भव्य शास्त्र स्वाध्याय करने में रंच भी प्रमाद मत करो। सम्यक्त्व रत्न को प्राप्त कर भाव से संयम गुण का आचरण करो जो पंचेन्द्रियों के विषय पंच नागों के समान हैं। 'जिस प्रकार सर्प जैसे-जैसे काटता है तैसे-तैसे जहर सर्वाङ्ग में फैलता जाता है जिससे मरण को जीव पाता है। यदि तुम इन इन्द्रियों के विषयों में आसक्त हो गये तो अनन्त भव धारण कर बहुत दुःख भोगने पड़ेगे। इसलिये ये इन्द्रिय विषय हैं ये नागिन के विष की अपेक्षा बहुत जहरीले हैं। नागिन एक जन्म को नष्ट करेगी परन्तु ये इन्द्रिय भोग अनंत भवों को नष्ट करते हैं। अथवा दुःख भोगने पड़ेगे। इसलिये शास्त्र स्वाध्याय कर, सम्यक्त्व उपार्जन कर जो सम्यक्त्व संसार वन को जलाने में अग्नि के तुल्य हैं।

आचार्य कहते हैं कि जिन्होंने सम्पूर्ण शास्त्रों का पाठ करके भी अपने उत्थान का विचार नहीं किया, और स्त्री तथा लक्ष्मी में ही आसक्त हो रहे है उनको मैं कहता हूं कि तुमने शास्त्र रूपी बोझा को ही धारण कर व्यर्थ में ही ढो रहे हो। जिस शास्त्र पढ़ने का तो यही हेतु है कि अपने व पर के स्वरूप

को जानकर पर का त्याग कर सुखी होवो।

लेकिन हम देखते हैं कि शास्त्रों को पढ़कर भी स्त्री, पुत्र धन, दौलत, जमीन में रत हो रहे हैं तथा मोह रूपी पिशाच के द्वारा हने गये हैं जिसमें दुःखों के समुद्र नरकादि गतियों में जन्म, मरण कर दुःख असह्य भोगने पड़ेंगे। स्त्री जो अत्यन्त कमनीय है वही स्त्री तेरे को दुर्गति की दाता और यह जमीन तथा लक्ष्मी भी बैर बढ़ाने वाली तथा बुद्धि को नष्ट करने वाली है उसको दुर्गति का कारण जानकर इनका त्याग करें तो सुख प्राप्त हो यही शास्त्र स्वाध्याय का फल है।

ईर्या, भाषा, ऐषणा, आदान, निक्षेपण और उत्सर्ग समिति तथा मनोगुप्ति काय गुप्ति, वचन गुप्तियों से युक्त होता हुआ सम्यग्दृष्टि जीव जिनेन्द्र भगवान के वचन रूपी अमृत का पान करता है। अज्ञानी वाह्य तपों को तपता है जिन वचन का श्रद्धान व जिनवाणी पर विश्वास नहीं करता है और मिथ्या तपाचरण करता है। और उस तप के फल की इच्छा करता है जिससे नवीन-नवीन कर्मों का बंध कर लेता है। यही गति सब संसारी जीवों की हो रही है। जब यह जीव जिन वचन रूप अमृत का पान करता हुआ पांच समिति तथा तीन गुप्तियों से युक्त होकर तपाचरण करता है तब जितने कर्मों को मिथ्यादृष्टि अज्ञानी कोटि वर्ष तक तप करके भी कर्मों का नाश नहीं कर सकता उन कर्मों को सम्यग्दृष्टि ज्ञानी संयमी घड़ी में नष्ट कर डालता है।

जिसके गुप्तियां नहीं हैं, न समितियां ही हैं, न जिन वचन रूपी औषधी का ही सेवन करता है उनकी मुक्ति नहीं होगी। क्योंकि वह राग, द्वेष, मोह, मिथ्या, निदान, क्रोध, मान, माया, लोभ, स्पर्शनादि पंचेन्द्रियों के साम्राज्य का आप स्वामी बन रहा है इसलिए उसके तो सतत कर्मों का आस्रव होता

ही रहता है। क्योंकि कारण जैसा हो वैसा ही कार्य होता हुआ देखा जाता है। राग का राज्य वही कर्म का आस्रव व बंध का कारण है। जहां राग रूपी अग्नि धधक रही है वहां क्या शांति मिल सकेगी? यदि किसी को मिल गई होगी तो कहो किसको। इसलिए इस राग रूपी आग में सब ही संसारी आत्माएं दिन रात जल रही हैंतथा अपना सर्वस्व जला बैठी हैं। मिथ्या-संयम व मिथ्या तप का आचरण करते हुए भी उसके फल को पाने की वांछा चित्त में व्याप्त रह जाती है। निदान बंध कर लेता है। जिस प्रकार जंगल में रहने वाली भीलनी गज-मुक्ताओं को छोड़कर लाल गोगचचियों का हार बनाकर गले में सहर्ष धारण करती है। इसी प्रकार अज्ञानी जीव तप का फल पंचेन्द्रियों की भोगों की वांछा कर नष्ट कर लेता है। तो भी उत्तम देव गति के सुखों को नहीं प्राप्त होता। वह तो नीच देवों में ही उत्पन्न होता है। जिनेन्द्र भगवान रूप सूर्य के प्रकाश को प्राप्त होकर जब-जब गुप्ति समिति से युक्त हो कर संयम और तप में आसक्त हो मोह रहित होता है तब यह प्राणी संपूर्ण ज्ञानावर्ण, दर्शनावर्ण, मोहनीय, अंतराय कर्मों का क्षय कर जो अनर्गल मोक्ष सुख है उस को शीघ्र ही प्राप्त होता है। समिति, गुप्ति, संयम, तप ये मोक्ष का कारण है तथा इन सहित करण आत्मा ही मोक्ष का कारण है।

जिन प्राणियों के सतत् पुण्य का उदय होते हुए भी सब प्रकार से सुख नहीं क्योंकि जिन के धन वैभव स्त्री, पुत्र, सब पुण्य के उदय से योग्य आज्ञाकारी मिले हैं किन्तु शरीर में रोग होने से दुखी रहता है। किन्हीं के स्त्री, पुत्र योग्य आज्ञाकारी मिले पुण्य के उदय से राज लक्ष्मी भी प्राप्त हुई तो भी पर स्त्रियों की इच्छा लगी हुई है कि मुझे भी वैसी स्त्री चाहिये थी। किसी

के स्त्री धन निरोग शरीर प्राप्त है लेकिन पुत्र नहीं इससे दुःखी यदि पुत्र हो गया होकर मर गया तो और अधिक दुःख, यदि पुत्र प्रौढ़ हो गया और कुसंगत करने लग गया, परस्त्री लम्पटी व्यभिचारी हो जाने से दुःखी ही रहता है। किसी के स्त्री कलह कारिणी होने के कारण दुःखी होता है। किसी के धन नहीं होने से दुःखी। राज्य वैभव प्राप्त होने पर भी इष्ट मित्रों के वियोग को देखकर दुःखी होता है। कोई दूसरे की स्त्री वैभव को देखकर मन ही मन दुःखी होता है। हाय मुझे इन सबकी आज्ञा पालन करनी पड़ती है मुझे इनकी सवारी बनना पड़ता ह। हाय मुझे राजा की सभा में भी जाने का अधिकार नहीं। इस प्रकार संसार में जीवों का कहीं भी पुण्य के उदय रहते हुए भी सुख शाश्वत नहीं। फिर भी यह अपने अशुभ भावों का त्याग नहीं करता न शुभ भावों को ही करता है। इन शुभ व अशुभ भावों से रहित जो शुद्ध भाव हैं वे ही भाव कर्मों को क्षय करने में समर्थ हैं। पुण्य का उदय भी जो अविनाशी सुख है उसको देने में असमर्थ हैं। यह सत्य है, निश्चय है कि पुण्य से सुगति पाप से दुगति होती है। जब सब कर्मों से रहित होते हैं तब सिद्धगति की प्राप्ति होती है।

जिनेन्द्र भगवान का कहा हुआ मार्ग ही श्रेष्ठ है उस मार्ग में चलने पर ही जीवों को सुख की प्राप्ति होती है और सम्यक्त्व ज्ञान संयम और तप रूप है। उसका जो आचरण करते हैं वे ही सुख शन्ति को प्राप्त होते हैं। जो अपनी शक्ति का दुरुपयोग करते हैं वे कषाय और मिथ्यात्व का त्याग नहीं करते हुए भात, दाल, घी, दूध, का त्याग करके अपने को त्यागी मानते हैं वे अज्ञानी हैं। क्योंकि सम्यक्त्व पूर्वक आचरण नहीं करते हैं।

जिस समय आत्मा पांच समिति और तीन गुप्ति से युक्त हो जांय तव पूर्व में वांधे हुए ज्ञानावर्णादि कर्मों का वंधन ढीला हो जाता है। उसी समय इसको अपने निज गुणों का प्रकाश करने का अवकाश प्राप्त होता है। तव यह निज गुणोंका वार-वार स्मरण करता है। तथा अपने निज गुणों को प्राप्त कर आप अपने में आप ही विलास करता है। अथवा अपने स्वरूप में मग्न हो जाता है।

संसारी अज्ञानी जोव नित्य नाना प्रकार के धर्मानुष्ठान करते ही रहते हैं। धर्मानुष्ठान कर किंचित् पुण्य उपार्जन करके उसका फल भोगते हुए अपने को वड़ भागी मान लेते हैं। लेकिन यह पुण्य भी पाप का कारण होने से जीव. ज्ञानावर्ण, दर्शनावर्ण, वेदनीय, मोहनीय, अन्तराय आदि द्रव्य कर्मों को रागद्वेप आदि भाव कर्मों को औदारिकादि कर्मों का वंध कर लेता है। जव यह जीव समितियों का पालन करता है तथा गुप्तियों को आर-क्षक वनाकर अपने संचित कर्मों का वंधन ढीला कर देता है तथा नवीन कर्मों को आने नहीं देता है तव अपने निज गुणों का चितवन करता है। तथा निज गुणों की प्राप्ति करने की भाव-नायें दृढ़ हो जाती हैं तव परावरण की ओर दृष्टि नहीं जाती उस काल में यह आत्मा अपने में लीन हो जाता है तथा पर भावों का त्याग कर आत्मा में ही विलास करता है। तव पर भाव का गुप्तियों द्वारा अभाव हो जाता है यह जीव की शुद्ध दशा व शुद्धापयोगी होता है।

हे आत्मन! जव तक तू प्रमादयुक्त होकर पर बुद्धि कर रहा है तव तक ही राग और द्वेष इन दोनों की जोड़ी वृद्धि को ही प्राप्त कर रही है। स्वात्म शुद्ध स्वरूप सम भाव नही होने से तेरे संयम भी नहीं हो सकेगा। तथा स्व गुप्तियां भी नहीं

और समितियां भी नहीं तब तू विचार कर कि साधु कैसे हो गया।

हे भव्यात्मन् तेरा स्वभाव का तू जरा भी विचार नहीं करता तू तो अज्ञान दशा को प्राप्त हो रहा है। मोह रूपी मदिरा का पान कर लिया है। इसलिये स्व शुद्ध आत्मा के स्वभाव को भूल गया और कर्मफल, कर्म फल चेतना इन भावों में रत हो रहा है। जिससे राग द्वेष रूप अपनी परिणति कर रहा है। जब तक राग द्वेष रूप परिणति दूर न हों तब तक तू कह कैसा संयमी है ? संयमी नहीं असंयमी ही है। संयम तो राग द्वेष प्रमादों का (नाश रूप है) त्याग करने पर तथा समता भाव धारण करने पर है वहीं संयमी है। जब तक तेरे राग और द्वेष जो हमेशा कलह को ही स्वीकार करते हैं तथा आत्मा प्रदेशों में परिस्पन्द कराने में कारण होते हैं। जबतक यह आत्म प्रदेशों में परिस्पंद चलता रहे और समितियां गुप्तियां का पालन कर रहा है यह कैसी समिति और कैसी गुप्ति और कैसा साधु बन गया। इसलिये आचार्य कहते हैं कि यदि संयमी बनना है तो राग द्वेष तथा प्रमादों का त्याग कर समता भाव को धारण कर यही संयम है यही साधु का लक्षण है।

देखो अज्ञान दशा कैसी प्रबल है कि मिथ्यात्व और असंयम को ग्रहण करता हुआ जो परद्रव्य के स्वरूप हैं उन राग, द्वेष, मोह, क्रोध, मान, माया, लोभ, माया, मिथ्या, स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, कान ये सब पर पुद्गल द्रव्य में ही हैं परन्तु अज्ञान दशा में यह जीव उनको अपना ही मानता है। राग के कारण यह पर द्रव्य को निमंत्रण देकर बुलाता है और पर में ममता करता है कि बस ये ही मेरे उपकारी हैं। इस प्रकार पर में रत होता हुआ कहता है कि कर्मों का मैं नाश कर रहा हूं। आचार्य कहते

है कि इस प्रकार यदि तू करता रहा तो करोड़ों भव में तप तपने पर भी वे कर्म नाश नहीं होवेंगे। परन्तु तेरे को तीव्र दुःख ही देवेंगे। इसलिये कहा है कि पर भावों का त्याग कर तथा तेरे अन्दर के मिथ्यात्व असंयम कषायों का त्याग कर सगुप्ति समितियों का पालन प्रमाद छोड़कर कर। यदि तू दुःखों से बचना चाहता है। जो अज्ञानी लोग अपने स्वरूप को जान पर का त्याग करने को समर्थ नहीं। उनका यह रट लगाना कि हमारा आत्मा शुद्ध, बुद्ध ज्ञायक, चिदानन्द है यह सब कहना तोता की रटने के समान है जैसे तोता राम-राम कहता है परन्तु गुण धर्म कुछ भी नहीं जानता।

हे साधु ! जब तक कुज्ञान को नहीं छोड़ेगा तब तक तेने जो संयम धारण किया वह संयम नहीं। यह तो एक भेष मात्र ही है। जब तक साम्य भाव न हों तब तक कैसे तू अपने को पापों से बचा सकेगा। मध्यस्थ भाव नहीं पाया तो कैसी ये तेरी क्रियायें। कैसी वह भक्ति हो सकती है जिस पर श्रद्धान रूप भावना नहीं। भक्ति शरीर के गुणों का ज्ञान करने को नहीं कहते, भक्ति तो उनके गुणों में अनुराग उसके गुणों का बार-बार स्मरण करना यह भक्ति जबभी होगी जब जिन का स्तुती की जा रही है उनके स्वरूप व गुणों का विचार कर चिन्तवन करेगा। उससे तेरे को मुक्ति की प्राप्ति होगी। बिना श्रद्धा की भक्ति घातक अनन्त संसार में भ्रमण करते हुए जन्ममरण के दुःखों को बहुत काल भोगना पड़ेगा।

जिन के हृदय में पंचपरमेष्ठियों में श्रद्धान नहीं यदि वे उनकी कोई इच्छा से भक्ति करें तो भी वह भक्ति पाप छेदन का कारण नहीं। जब तक राग, द्वेष जीव के बने रहते हैं तब तक संयम नहीं हो सकता। भाव सहित संयम (सम्यक्त्व सहित)

जिनके होता है उनके मध्यस्थ भाव व साम्यभाव नियम से प्राप्त होते हैं। उस संयम में जिसकी भावना नहीं भावना के विना वह संयम जैसा है जैसे कि सुभट सूरत्व गुण के विना, बिना स्नेह की स्त्री। जिस प्रकार स्त्री पति से प्रेम नहीं करती उस स्त्री का पति के वियोग में रोना दिखावटी है।

यदि ज्ञान की प्राप्ति हो जाय तो भी संयम नहीं होता है। शंका यदि कोई कहेगा कि ज्ञानी के तो संयम होगा ही, यह कोई नियम नहीं क्योंकि ज्ञान नाम तो मिथ्या दृष्टि के भी होता है और सम्यग्दृष्टि के भी ज्ञान होता है। परन्तु पंच महाव्रत इन्द्रिय संयम प्राण संयम गुप्तियां समितियां नहीं होती. नसमता ही आती है। जिसने आत्मा के वैभव स्वरूप समयसार है उसको त्याग कर पुद्गल स्वरूप समय है तथा अन्य चेतन स्वरूप समय हैं उनको ही अपना वैभव मानता है। तथा सम्पूर्ण चेतन तथा अचेतन पदार्थों में राग बुद्धि करता है। यह सव उस मोह का ही वैभव है। यदि मोह न होता तो ज्ञान प्राप्त होते ही स्व समय-सार जो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् चारित्र जिसमें विद्यमान हैं वह आत्मा ही समयसार है अन्य नहीं। वे सव परभाव हैं।

जव तक पर पदार्थों में जीव का राग है तव तक सम्यक्त्व रूप भाव का जन्म नहीं होता। यदि सम्यक्त्व हो जावे तो (कषाय युक्त जाने) क्रोधादि कषायों में से कोई एक कषाय उदय में आकर उस भाव को क्षण में ही नष्ट कर देती है। इस प्रकार इसको कभी भी ऐसा अवसर प्राप्त नहीं हुआ कि जिस समय में यह पर भाव का त्याग कर स्वानुभूति रूप आत्मा को प्रत्यक्ष कर देखे। तथा आत्म स्वभाव को परद्रव्य और पर भावों से भिन्न कर देखें, तथा आत्मा में रमण करे। यही भावना कर जिससे पर की प्रवृत्ति मिटे और आत्मा में ही रमण हो।

हे आत्मन्! अब तुम हमारी बात मानो और संपूर्ण पर भावों का त्याग करो। जितने चेतन स्त्री, पुत्र, गाय, भैंस, अचेतन मकान, सोना, चांदी, पीतल, पत्थर, इत्यादि चेतना चेतन, ग्राम, नगर, राज्यादि जितने पदार्थ हैं उन सब का स्वरूप अपने से भिन्न है। वे भिन्न पदार्थ आत्म स्वरूप नहीं हो सकते। सब पदार्थों से भिन्न स्व संवेदन ज्ञान ही उपार्जन करने योग्य है। वही तेरा स्वभाव है। अन्य सब पर भाव हैं ऐसा जान।

अभीक्षरग ज्ञानोपयोग

जो प्राणी जिनेन्द्र भगवान के द्वारा प्रवचनामृत का पान बार-बार निरन्तर करता है उसके विवेक बुद्धि होती है। आगम चक्षु भी जिसको कहते हैं। जब तक आगम चक्षु की प्राप्ति नहीं होती है तब तक जीव हिताहित के विवेक से शून्य रहता है। अज्ञान अंधकार नष्ट हो जाता है। अहित का त्याग हित को ग्रहण करना। आगम चक्षु ही हेय क्या है उपदिय क्या है अपना क्या, पर का क्या, पुण्य क्या, पाप क्या इन सब का दिग्दर्शन कराने वाला तो स्वाध्याय ही है स्वाध्याय से रहित होने से ही अविवेकी हिताहित के विचार से शून्य होकर पापोपार्जन करते रहते हैं। यदि तुम अपना हित चाहते हो तो तुम स्वाव्याय निरन्तर मन, वचन, काय की विशुद्धता पूर्वक करो। क्योंकि जब तक जीव के आगम चक्षु नहीं होते तब तक शुभ भावनाओं में प्रवृत्ति तथा अशुभावनाओं का परिहार कैसे करोगे ?

हे भव्यात्मन! स्वाध्याय करने से जो मन में विकलतायें स्मरण में आती थी जिनके कारण अपना संक्लिष्ट परिणाम रहता था उन विकल्पों का परिहार हो जाता है जो वाल बुद्धि अविवेक तो सदा से ही चला आ रहा है जब जिनागम का अध्ययन किया तब विवेक हुआ। विवेक रहित हो कर जो कुछ क्रिया की वह सब क्रियायें पाप का ही कारण हुई। जब तक नुबुद्धि नहीं होती है तभीं तक विकथायें स्थित रह जाती हैं। यह

निश्चय व नियम ही है कि जहां पर विकथायें जिन के हृदय में विद्यमान हैं वहां पुण्य का व धर्म का क्या काम है ? क्योंकि वहां तो राग और द्वेप की वृद्धि ही है। राग द्वेप ही अनंत संसार की वृद्धि का कारण है। तथा राग द्वेप ही दुर्गति का और वैर विरोध का हेतु है।

हे भव्यात्मन् ! यह कुज्ञान ही पंचपरावर्तनरूप अनंत संसार का कारण है (वीच है) उस अविद्या के कारण ही जीव के कुभाव ही होते है। अर्थात् कुभावों को ही उत्पन्न करती है। इसलिए जिनवाणी का निरंतर अभ्यास कर सुबुद्धि उपार्जन करते हुए कुविद्या को मन से निकाल क्योंकि अज्ञानता ही में संसार है और दुःख हैं। सुविद्या की प्राप्ति होना ही सुख है अथवा मोक्ष है। इसलिए प्रयत्न पूर्वक कुविद्या का त्यान कर।

आचार्य कहते हैं कि प्रमाद का त्याग कर सम्यग्ज्ञान कर अर्जन करो। और उस उपार्जन किये हुए ज्ञान में श्रद्धान करो जिससे आकुलता दूर भाग जावे, आनाकुलता सन्मुख आ जावे। ज्ञान ही ध्यान का कारण है, ध्यान से संवर पूर्वक कर्मों की निर्जरा होती है। और निर्जरा मोक्ष का कारण है। संपूर्ण कर्मों की प्रकृतियों का नाश होना मोक्ष है इसलिए चित्त लगाकर ज्ञान उपार्जन करो, ऐसे भगवान जिनेन्द्र देव कहते हैं। स्वाध्याय करने से ध्यान की सिद्धि होती हैं, ध्यान से कर्मों का संवर और निर्जरा होती है अशेष कर्मों के नाश होने पर मोक्ष होता है इसलिए शास्त्रों का निरन्तर अध्यन व मनन करो।

आप सब हमेशा शास्त्रों का अध्ययन करो। शास्त्र अयध्यन में लवलीन हो जाओ। जिसके करने से तुम में विवेक जाग्रत होगा। विवेक होने पर सब पदार्थों में समता होगी। समता भाव होने से राग द्वेष रूप परिणामों का अभाव होगा। और

संसारी प्राणियों के अधिष्ठाता बन जाओगे। जो विद्वान् होते हैं वे ही तपस्या करने में कुशल होते हैं और पंचपरावर्तन रूप दुःख मय संसार का छेदन करने में समर्थ होते हैं। तथा मंसार में श्रेष्ठ इन्द्रादिक भी उनकी सेवा करते हैं। हे यतिश्वरो। अपने अमूल्य समय में संसारी विकल्पों की तरफ चित्त को मत दोड़ाओं विषय सुखों का पान करने से दुःखों का निरन्तर अनुभव करना पड़ेगा। विषय सुखों का सेवन करने पर राग की वृद्धि तथा द्वेष की वृद्धि होगी जिससे वैर विरोध बढ़ेगा। राग वैरी के समान द्वेष मित्र के समान है। जिस प्रकार ए० सी० करेन्ट राग रूप है जो लगजाने पर तब छोडती है जब सर्वांग से प्राणों को नष्ट कर देती है लेकिन डी०सी० करेन्ट जो होती है वह धक्का देकर छोड़ देती है वह प्राणों का घात नहीं करती। इसी दृष्टान्त को अपने ऊपर भी समझकर राग का त्याग कर। जो उत्पन्न हुए हैं, पंचेन्द्रियों के विषय सुख। उनको अज्ञानी जीव अपने मानता है और उनको छोड़ता नहीं। परन्तु जिस प्रकार सुई में डोरा पिरोया हुआ हो तो गिर जाने के पश्चात फिर मिल जाती है। बिना डोरा की सुई नष्ट हो जाती है। उसी प्रकार जिन्हांने सूत्र का अध्ययन किया है वे सम्यक्त्व और संयम से कभी भी च्युत नहीं होते। यदि किसी कारण से संयम से च्युत हो जावें तो पुनः संयम को ग्रहण कर सकता है वह नष्ट नहीं होता। स्वाध्याय परम तप है। मनुष्य प्रति समय जो रस, गंध, रूप, स्पर्श, संस्थान, संहनन तथा स्त्री, पुत्र, मित्रादि में राग नहीं करता और न इनको अपना ही मानता है वह तो इन से अपने को भिन्न ही देखता है।

हे भव्य ! जितने पर भाव हैं वे स्वाध्याय करने से समझ में आ जाते हैं इसलिये शास्त्रों का पाठ निरन्तर करो। स्वाध्याय

करने से बहुत से गुण अपने में प्रकट होते हैं। तथा वही बहुत गुणों का खजाना बन जायगा। स्वाध्याय करने से उसी समय पाप मल नष्ट होने लग जाते हैं। सकल संयम रूप जो आत्मा है उस आत्मा में विलास कर। खोटे कर्म जीवों के द्वारा अज्ञान दशा में ही किये जाते हैं। उस अज्ञान दशा का नाश करने के लिये स्वाध्याय कर ऐसा आचार्य की आज्ञा है।

जितनी सुविधायें हैं वे सब अर्जन करने योग्य हैं उनके उपार्जन करने के लिये प्रयत्न करना चाहिये। ज्ञान ही महार्घ है सब गुणों की ज्ञान से शोभा है। ज्ञान शून्य के प्रथम तो गुण होते नहीं यदि हों तो वे शोभा को व निराकुलता को नहीं प्राप्त हो पाते हैं। ज्ञान धन जो है उसमें कोई भी भागीदार नहीं अथवा ज्ञान रूपी धन में से हिस्सा नहीं हो सकता। ज्ञान को प्राप्त कर सम्यक्त्व रूप श्रद्धा में लाना और पुनः उसको आचरण में लाने पर ही ज्ञान श्रेयस्कर होता है।

इस शरीर में से सदा मल झरते ही रहते हैं इस शरीर में कोई भी पवित्र वस्तु नहीं। कुधातुयें सात प्रकार की हैं उन सातों कुधातुओं से ही शरीर भरा हुआ है और विनाश सहित है यह शाश्वत नहीं है। ये बल, यौवन तथा आयु कोई स्थिर नहीं है, यह शरीर शाश्वत नहीं इस शरीर में तू राग मत कर, यह राग करने योग्य नहीं। इस प्रकार जान इस पर मोह मत कर इसका दुर्गन्धमय पदार्थों से ही निर्माण हुआ है और मलों का ही खजाना है और अनेक प्रकार की व्याधियों से युक्त है। इस लिये इसमें राग न कर संयम का इस शरीर से पालन करो ऐसा श्री गुरु का उपदेश है।

यह यौवन पहाड़ से बहने वाली नदी के समान शीघ्र गामी है। जिस प्रकार नदी पहाड़ से निकलती है और बड़े तीव्र वेग

से बहती है वैसे ही यौवन है। जीवन पानी की लहर के समान है जो देखते-देखते क्षय हो जाता हैं। स्त्री, पुत्र, बांधव, कुटुम्वी जन हैं वे भी शाश्वत नहीं जिनका संयोग हुआ है उनका वियोग अनिवार्य है।

स्वार्थ बुद्धि से सब भाई, माता-पिता, स्त्री, वहनोई, भानजा प्रेम करते हैं। तू भी उन सबको देख उनमें प्रीति करता है वे सब तेरी कीर्ति का गान करते हैं। जव तेरे ऊपर दुःख या आपत्ति आवेगी तव ये सव तेरे पास खड़े भी नहीं होंगे अथवा तेरी वेदना का बटवारा कोई भी नहीं कर सकता। वे दुःख तो आपको ही भोगने पड़ेंगे।

जो जहां रहते हैं वे वहां ही रह जाते हैं। धन तो जमीन पर रखा रह जाता है या जमीन के भीतर गड़ा हुआ रह जाता है। गाय, भैंस, हाथी, घोंड़े सब बंधे रह जाते हैं। स्त्री घर के आंगन में वैठी रह जाती है अथवा दरवाजे तक आ जाती है वह वाहर नहीं जा सकती। जो अपने सगे संबंधी पुत्र, पौत्र, भाई हैं वे शमशान भूमि तक तेरे साथ जाने वाले हैं। चार आदमी मिलकर इस शरीर को उठाकर चलते हैं वे भी मरघट तक। मरघट में जाकर लकड़ियों की चिता वनाकर तेरे शरीर को रख देंगे और उस चिता में आग लगा देंगे जिससे चिता सहित यह शरीर भस्म हो जायेगा। इसलिये जो उत्तम धर्म है उसका ध्यान कर।

हे अज्ञानी ! जो तू देख रहा है वे सब पर्यायें हैं और विनाश रूप हैं शाश्वत नहीं। संसार में तू जिन वस्तुओं को अपनी मानकर उनमें आशक्त हो रहा है वे सब एक क्षण में विनाश होने वाली हैं। हे मूढ़ मति ! जो भाई, पुत्र, स्त्री तथा अपना गांव है वह भी तेरा नहीं तो अन्य तेरे से भिन्न पदार्थ

तेरे कैसे हो सकते हैं ? अर्थात् कदापि नहीं हो सकते। जैसे आकाश में छाये हुए बादलों में बिजली चमकती है और नष्ट हो जाती है वहां पीछे कुछ भी नहीं रह जाता है इसी प्रकार संसार की अवस्था है।

जिनकी उत्पत्ति हुई है वे विषय पंचेन्द्रिय जनित हैं जिनको तू अपना मान रहा है। जो वैभव तेरे को दिखाई दे रहा है उस क्षणिक वैभव को तू अपना मान राग कर रहा है स्वामी बना बैठा है वह वैभव तेरे देखते-देखते विनाश हो जायगा। इसलिये आचार्य कहते हैं कि अब अज्ञानता का परिहार कर यह अज्ञानता ठीक नहीं है। इससे तेरे को तेरी वस्तु जो अविनाशी है वह नहीं प्राप्त होगी। जो तुझको मनुष्य जन्म प्राप्त है उस मनुष्य जन्म का तो सार यही है कि धर्माचरण कर चारित्र रूप स्वभाव तेरा है वह तेरे में ही स्थित है उस धर्म संयम को धारण कर यही इस जन्म पाने का सार है।

जिन पंचेन्द्रियों के विषयों को तू उत्तम सुखदायी मानकर भोग रहा है इनके सिवाय तेरे को अन्य कुछ भी सुहाता नहीं। हे विनष्ट बुद्धि ? ये क्या सुख हैं, वे तो दुःख ही रूप हैं और भोगते समय अच्छे लगते हैं परन्तु पीछे दुःख देने वाले हैं। इन पंचेन्द्रियों के भोग-भोगने से यदि तेरे को शांति मिल जाय तो भोग। परन्तु भोग-भोगकर शान्ति नहीं और आकुलता ही बढ़ जाती है। जिस प्रकार कुत्ता हड्डी को चबाता है हड्डी के चबाने से मसूड़े फूट जाते हैं और उनमें से रक्त बहने लगता है कुत्ता उस रक्त को चाट कर अपने को बड़ा भाग्यवान मानता है विचारता है कि हड्डी में से रक्त निकल रहा है, जब चबा लेता है उसके पीछे जबाड़े में दर्द होता है तब कांऊ-कांऊ कर चिल्लाता है चैन नहीं पड़ता। पुनः जब जबाड़ा ठीक हो जाता है तब फिर

हड्डी चवाना शुरू कर देता है यही गति अज्ञानी जीव की है। भोग-भोगते समय श्रेयस्कर दिखते हैं परन्तु विपाक समय में ये महान् दुख देते हैं और अस्थिर हैं।

यह प्राणी पंचेन्द्रियों के भोगों को भोगता है अथवा सुन्दर कामिनी के साथ रमण करता है जिससे पाप उपार्जन कर दुस्तर दु:खों के समुद्र में जा गिरता है। यह जानते हुए भी अज्ञानी काम लुब्ध स्त्री के सहवास का त्याग नहीं करता है। जब यौवन निकल गया, अथवा संयम धारण करने का जो काल था वह निकल गया तव हाय-हाय करता दु:ख रूप पंच-परावर्तनों में पड़ जाता है और जन्म मरण के दु:खों को वहुत काल तक भोगता है। इसलिये जव तक तक बुढ़ापा नहीं आया तव तक विषयों का त्याग कर अपना हित करने का उपदेश दिया है। जब यह मनुष्य पर्याय निकल गई तो फिर मनुष्य होना, उच्च-कुल का मिलना, साधुओं की संगत, धर्म श्रवण करना, जिनेन्द्र भगवान का कहा हुआ धर्म मिलना दुर्लभ है।

संसार में दु:ख का कारण मूल में हिंसा आरम्भ और मिथ्यात्व तथा आहार, भय, मैथुन, परिग्रह में आसक्ति है। तथा बाह्य परिग्रह और अंतरंग परिग्रह की भावना करता है तथा किसी को इष्ट मानता है तो उससे राग करता है किसी को अनिष्ट मानता है तो उससे द्वेष करता है। चार संज्ञा रूपी ज्वर से अत्यन्त पीड़ित हो रहा है तो भी इनकी तरफ से मुख को मोड़ता नहीं उसके सम्मुख ही रहता है तथा भोगों को भोगकर पुन: हजारों दु:खों को भोगता ही रहता है।

इस जीव को सात भय रूपी व्याधि हमेशा दु:ख देती है। यह जीव इन भयों का त्याग नहीं करता न कषायों का ही त्याग करता है। असमय रूप पौद्गलिक जो कर्म हैं वह उन द

कर्मों के उदय से प्राप्त पुद्गलों की पर्यायों को ही अपनी स्थिति मानता है। उन पुद्गल कर्मों के विपाक काल में कर्म फलों का अनुभव करता है यह शरीर के विनाश होने को अपना मरण मान कर उससे भयभीत होता है परन्तु रोग, वेदना, अनरक्षक परलोक, इहलोक इत्यादि भयों से व्याकुल रहता है एवं सात व्यसन भी हैं इन व्यसनों की व्याख्या कर ही आये हैं। इन व्यसनों का तथा असंयम का त्याग करें तब स्वसमय की प्राप्ति होगी।

मुनीश्वरों को अथवा चार प्रकार के संघ मुनि, आर्यिका श्रावक, श्राविकाओं के समूह को संघ कहते हैं। उनके लिए आहार दान, औषध दान, अभय दान तथा वसतिका दान, पुस्तक व पिच्छिका, कमण्डलु इत्यादि वस्तुयें प्रदान करना चाहिए। दाता दान देते समय उस दान के बदले में मंत्र, तंत्र आदि की इच्छा नहीं करते हुए भक्ति श्रद्धापूर्वक दान देना चाहिये। तथा दान देते समय मात्सर्य भाव से व पक्षपात से दान नहीं देना चाहिये। दान निर्लोभी, संतोषी, पाप भीरु और विनय पूर्वक ही देना योग्य होता है। दान देते समय यह भी लक्ष्य रखना चाहिये कि देश, काल, क्षेत्र और विधि के अनुसार ही आहार देने वाला दाता उत्तम कहा जाता है। वैयावृत्ति करते समय भी विवेक रखकर करने से ही महा पुण्य का लाभ होता है। ऐसी भावना नहीं करनी चाहिये असमय में अतिथि आगये इस समय कौन यहां आहार पान तैयार करेगा ? और गुस्सा व मात्सर्य भाव रख कर की गई आहार दान व वैयावृत्ति सब निष्फल हो जाती है।

हजारों नदियां-पानी अनादि काल से बहाकर ला रही है और समुद्र सब पानी को पीता जाता है फिर भी संतोष को नहीं पाता न कभी अपनी मर्यादा को ही छोड़ता है यह कभी भी नहीं

कहता कि बस हे नदियों अब में तृप्त हो गया अब पानी बहाकर मत लाओ। अग्नि, त्रण, और लकड़ियों को जलाती हुई तृप्त नहीं होती। उसी प्रकार यह संसारी जीव पंचेन्द्रियों के भोगों को भोग कर कभी भी तृप्त नहीं होता है। इस जीव ने ऐसा पुद्गल का कोई रस नहीं छोड़ा। संपूर्ण द्रव्य को अपना आहार बना लिया है। एक बार ही नहीं अनेक बार खा-खा कर छोड़ दिया फिर भी उससे तृप्त नहीं हुआ। जूठन को ही खाकर अपने को बड़भागी समझता है।

संसारी के जितने सुख हैं वे सुख अज्ञानता पूर्वक हैं अज्ञानी जीव सुखाभाषों को ही सुख मानते रहते हैं। और वह सुख पराधीन हैं आकुलता सहित है। संसार के सुख आकुलता को उत्पन्न करते हैं। क्षण-क्षण में विनाश को प्राप्त होते हैं। इन्द्रिय जनित हैं संयोग पूर्वक हैं। किन्तु जो मोक्ष सुख है वह पराधीनता से रहित स्वाधीन और अक्षय अथवा अविनाशी है। और वह सुख ज्ञान ध्यान के बल से घातिया, अघातिया दोनों प्रकार के अशेष कर्मों के क्षय से उत्पन्न हुआ है। जिसमें पर द्रव्य, काल, क्षेत्र, या भाव का कोई सम्बन्ध नहीं रह जाता। इसलिये जो निज गुणों का घात करते थे वे प्रतिपक्षी कर्म जब नाश हो गये तब आत्मा का जो ज्ञान है वही स्वरूप आत्मा में परिणमन करता है। इस कारण यदि तुझको मोक्ष सुख की अभिलाषा है तो निरंतर ज्ञानाभ्यास कर ज्ञान ही ध्यान का कारण है और ध्यान करने से कर्मों की निर्जरा होती है। कर्मों की निर्जरा होने पर ही मोक्ष सुख की प्राप्ति होती है। दान, वैराग्य ये सब एक शास्त्राभ्यास के बिना शोभा को नहीं पाते है। विवेक बिना दान, विवेक बिना तप, विवेक बिना चर्चा, बिना विवेक तपस्या व विवेक बिना पूजा भक्ति उपासना सब शोभा को नहीं पाते हैं।

बिना विवेक के वे क्रियायें यथार्थ फल प्राप्त कराने में असमर्थ नहीं होती हैं इसलिये ज्ञानाभ्यास निरन्तर करने को ही अभीक्षण ज्ञानोपयोग संवेग भावना कहते हैं।
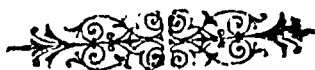
अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग का महात्म्य

जिन विद्वानों ने संपूर्ण शास्त्रों का अध्ययन किया विद्वान् नाम से सम्बोधित हुए परन्तु ज्ञान तो प्राप्त किया लेकिन उस ज्ञान में श्रद्धान नही हुआ तो क्या वह ज्ञानी है ? वह तो ज्ञानी होकर भी मूर्ख ही है। यदि संसार की सब अवस्थाओं का व्यवहार ज्ञान व उपदेश लोगों को दिया परन्तु अपने अन्दर वैराग्य नहीं हुआ तो वह पंडित नाम धारी है। वह कैसे संसार के दु:खों से भयभीत है ? जो संसार के दु:खों का ज्ञायक होकर भीं संसार से मुख न मोड़े। वह ज्ञानी नहीं अज्ञानी है। आचार्य ने यह उपदेश दिया कि ज्ञानी उसी को कहते हैं जिसने संसार के दु:खों को जान तथा संसार के दु:खों के कारणों को जान कर विकृत करने वाले कुभाव रूप आर्तध्यान रौद्र ध्यानों को (त्याग कर सम्यक्त्व) जान मिथ्यात्व, असंयम, कषाय, अविरित और प्रमादों को त्याग कर सम्यक्त्व और संयम को धारण करे तो वह बिना पढ़ा हुआ होने पर पंडित है वह अज्ञानी मूढ़ नहीं।

विशेष—अज्ञानी और ज्ञानी इन दोनों में अन्तर बताया है कि पढ़ा हुआ पंडित नहीं क्योंकि पढ़ने से कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं उस पर जब तक श्रद्धा गुण नहीं हुआ तो वह ज्ञान कुज्ञान और संसार भोगों के कार्य कारणों को जानता है और दु:खी भी होता है परन्तु उनका त्याग नहीं करता है। वह विद्वान् नहीं

वह मूढ़ वहिरात्मा है। यह जान लिया है कि मिथ्यात्व गृहीत अगृहीत, संशय, विपरीत, एकांत, विनय, अज्ञान इनके स्वरूप को भली प्रकार जानते हुए भी नहीं त्यागता है। संयम के पांच भेद हैं सामायिक. छेदोपस्थापना, परिहार विशुद्धि, सूक्ष्म सांप-राय और यथाख्यात के स्वरूप को जान लिया कि ये संयम संसार के दुःखों से जीवों की रक्षा करते हुए अविनाशी मोक्ष सुख में पहुँचाते हैं। परन्तु इतना जानते हुए भी उन संयमों की भावना नहीं करता है वह कैसा वैरागी, कैसा पंडित ? वह तो मूर्ख ही है। यहां पर कहा गया है प्रमादी विद्वान होकर भी अपने हित के विचार से शून्य है। इसलिये आचार्य कहते हैं कि जानने मात्र से शुद्धोपयोग रूप आत्मा की प्राप्ति नहीं। जब मिथ्यात्व का तथा असंयम कषायों का व प्रमाद का त्याग कर अपने में विराजमान मोह, राग उसका त्याग कर निर्मोह वने, सुख दुःख में समता भाव हो तव उसको आचार्य पंडित कहते हैं नहीं तो जठ सठ कहते है।

जिनका दीर्घ संसार वाकी रह गया है वे ही जिनेन्द्र भग-वान् के द्वारा कहे गये मोक्ष मार्ग पर विश्वास नहीं करते। जिन वचन अमृत स्वरूप हैं जो इसका पान करता है वह जन्म, मृत्यु जरा रूपी महाव्याधियों से मुक्त हो जाता है। यह जिन वचन रूपी महाऔषध पापमल पंचेन्द्रियों के विषय विष का वमन करने वाली है। तथा सर्व प्रकार के दुःखों का नाश कर अविनाशी अव्यावाध ऐसा मोक्ष सुख को प्राप्त करती है। उसको न मान अज्ञानी जीव पंचेन्द्रियों के विषय रूपी विष का उत्साह पूर्वक भला मान उसका सेवन करते हैं जिससे वाला-वस्था में जन्म लेते समय से लगाकर यौवन तक तथा यौवन से लेकर वृद्ध अवस्था तक के अनेक प्रकार के दुःखों का अनु-

भव कर आर्तध्यान व रौद्र ध्यान पूर्वक मरण कर अनन्त काल तक दुःखों का भोग करते रहते हैं।

विशेष—यह अज्ञानी मोही पंचेन्द्रियों के विषय वासनाओं में सदा लिप्त रहता हुआ अपने हिताहित का विचार नहीं करता। वह सन्मार्ग से विमुख ही रहकर पाप उपार्जन कर अनन्त संसार में भ्रमण कर जन्म मरण इष्ट-वियोग अनिष्ट संयोग के व वेदना से होने वाले दुःखों को भोगता ही है। इस-अभीक्षण ज्ञानोपयोग का स्वरूप कहा।

जो भव्य जिनेन्द्र भगवान के कहे हुए मार्ग में चलता है और बार-बार जिनवाणी का चिन्तवन करता है उसके समीप गुणों का समूह स्वभाव से ही आ जाता है। और उसकी कीर्ति दिशा-विदिशाओं में फैलती है। उसका यश दूर-दूर तक फैल जाता है वही महान तथा श्रेष्ठ होता है। जो जिनवाणी रूपी औषध का पान करता है वह ही हलधर, विष्णु, (नारायण) प्रतिनारायण, चक्रवर्ती व तीर्थंकर भी होता है। तथा संसारिक सुखों का एक सबसे बड़ा स्थान देवगति है उसको प्राप्त हो महेन्द्र व इन्द्र भी वह होता है। वे ही जीव जिनवाणी की आज्ञा प्रधान कर जिनदीक्षा को धारण कर कर्म शत्रुओं का समूल नष्ट करके तथा द्रव्य कर्म भाव कर्म नो कर्म इन सब का नाश करके अविनाशी मोक्ष सुख को प्राप्त होता है। इसलिये हे भव्य जीवों! जिनवाणी का सतत् प्रयत्न पूर्वक अध्ययन करो। यह जिनवाणी ही शिव सुख दानी पाप व्याधिहरण करणी है। जो उसे नित्य ध्याता है वह भव्य नरोत्तम, स्वर्ग मोक्ष सुख को प्राप्त करता है।

भुक्त्वा सुख हाय दान से करके जीव स्वर्ग तथा भोग भूमि के सुखों का अनुभव कर देव होता है वहां पर सागरों की स्थिति को प्राप्त

कर दिव्य सुखों का भोग करता है। देव होकर मनुष्य और मनुष्य होकर देव होता है तथा चक्रवर्ती होता है एवं तीर्थंकर होता है तथा पंच कल्याण जिसके होते है। गर्भ में आने के पूर्व छह माह रत्नों की वर्षा होने लगती है। गर्भ के वाद भी नितप्रति रत्नों की वर्षा वे छप्पन कुमारी देवियां माता की सेवा में तत्पर रहती हैं। तथा जन्म होने पर इन्द्रों के आसन कम्पायमान होते हैं तथा देवेन्द्र नगर की रक्षा व उसके पूर्व में ही कुवेर सजाता है तथा जन्माभिषेक होता है। तत्पश्चात राज्याभिषेक व दीक्षा कल्याण, केवलज्ञान, कल्याणों को प्राप्त होकर भव्य जीवों को धर्म का मार्ग प्रदर्शन करते हुए अन्त में निर्वाण कल्याण को प्राप्त कर वे सिद्ध पद को प्राप्त होते हैं। इस प्रकार क्रमशः पदों को प्राप्त वही सम्यग्दृष्टि होता है जो जिनवाणी का निरन्तर अभ्यास करता है। वलदेव, कामदेव, नारायण, प्रति नारायण इत्यादि पदों को भी यह स्वाध्याय करने वाला साधु ही प्राप्त करता है।

संसार में देखा जाता है कि त्याग की वड़ी ही महत्ता है त्यागी की सव जन समूह प्रशंसा करते हैं। त्यागी की सव रक्षा करते है। त्यागी की शरण को प्राणी खोजते हैं त्याग से ही सुख की प्राप्ति होती है। त्याग से ही लोक में कीर्ति फैलती है। त्याग से ही पाप वंध रुक जाता है त्याग से नवीन कर्मों का वंध नही होता है त्याग करके ही मनुष्य इच्छित वस्तुओं को प्राप्त करता है त्याग करके ही इन्द्रादिक पदों का भव्यात्मका प्राप्त करता है। त्याग से ही पूज्य पुरुष वन जाता है, त्याग से ही गुरु वन जाता है। त्याग करने से ही नदी से पार व समुद्र से पार हो जाता है। त्याग करने से सव का सिरताज वन जाता है। सुख भी त्याग करने पर ही होता है तथा दुःखों का

नाश भी त्याग करने पर ही होता है। त्याग करने पर ही शरीर निरोग रहता है। इस त्याग की महिमा भगवान अर्हंत देव ने कही है। त्याग करने से ही गुणों का समूह अपने पास आ जाता है त्याग करने से ही वैरी भी अपने वशीभूत हो जाते हैं। त्याग करने से वैर विरोध सव क्षय हो जाते हैं। परिग्रह वाला ही संसार समुद्र में मग्न होता है, और संसार में भ्रमण कर दुःखों को सहन करता है निन्दा को भी प्राप्त होता है तथा उसकी यश कीर्ति भी नहीं होती। इसलिए त्याग करना ही श्रेष्ठ है। जिसने अपने घर का त्याग किया वह सव ग्राम का स्वामी वन जाता है जिसने अपने ग्राम का त्याग किया वह परगना का मालिक वन जाता है जिसने अपने परगना व जिला का त्याग किया दूसरे प्रदेश में पहुंचा तव वह उस प्रदेश का स्वामी कहलाया, जव प्रदेश का त्याग कर अन्य देश में पहुंच गया तव उस देश का स्वामी वन गया, देश को त्याग विदेश में पहुँचा तव सारे देश का स्वामी वन गया, यह सव त्याग की महिमा है। इसलिए धन का त्याग करना तथा अतिथियों के लिये आहार, औषध, ज्ञान, अभय रूप चार प्रकार का दान देना, मंदिरों व शास्त्रों स्वाध्यायशालाओं का निर्माण करना तथा स्वाध्याय के साधन जुटाना इसमें अपने सद्द्रव्य का त्याग करके वृद्धि करना। अशुभ क्रियाओं का त्याग कर शुभ क्रियाओं में प्रवृत्त होना। मिथ्यात्व का त्याग कर सम्यक्त्व ग्रहण करना। असंयम का त्याग कर संयम को धारण करना, अन्तरंग चौदह परिग्रह और वाह्य दस प्रकार के परिग्रह का त्याग कर अपनी आत्मा की शुद्धि करना यह त्याग ही श्रेयस्कर और जगत पूज्य है। मनुष्य की प्रतिष्ठा त्याग में ही विद्यमान है। जो त्याग नहीं करता है, वह दूर अपने से

वहिर्मुख है। जव संसार का त्याग कर विरक्त होता है और शरीर से भी ममत्व त्याग करता है, व पंचेन्द्रियों के विषय वासनाओं का त्याग करता है, तव अपनी आत्मा का वैभव देखने को मिलता है। विना त्याग के तो कोई भी वस्तु नहीं मिलती तो विना त्याग के अविनाशी, अव्यावधि, अनन्त, अनुपम सुख कैसे प्राप्त होगा। ऐसी कोई भी वस्तु नहीं है जो त्याग से न मिले। दुर्लभ से दुर्लभ वस्तु भी त्याग से मिल जाती है तो संसार के सुख क्या वड़ी चीज हैं इसलिये यदि कुछ प्राप्त करना चाहते हो तो त्याग करना सीखो।

जो स्वाध्याय रूपी वीर रस अत्यन्त स्वादिष्ट हैं और जिसका कभी विनाश नहीं हो सकता है उसका जो पान करता है वह मनुष्य पर भावों का त्याग करता है जिससे संसार के दुःख रूपी समुद्र में डूवता नहीं वह अपने स्वभाव में ही रमण करता है और सम्यग्दृष्टि होता है। वह पुरुषार्थ करता है तथा स्वाध्याय रूपी वल को पाकर कर्म रूपी ईंधन को दग्धकर एवं अज्ञान का नाश कर व दर्शनावरणी और तीन आयु और अन्तराय को नाश कर शुद्ध स्वर्ण के समान हो जाता है इस भाव को प्राप्त करने के भाव से यह अभीक्षण ज्ञानोपयोग भावना मुझ मुनि ज्ञानभूषण के द्वारा रची गई है।

अर्थात् आचार्य कल्प श्री ज्ञानभूषण मुनि महाराज ने इस अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग भावना को अपने ज्ञानावरण कर्मो को क्षय निमित्तरची है और प्रशंसा व मान की चाह से नहीं लिखी।

हे भव्य! इस जीव ने विना ज्ञानोपयोग के पुद्गल द्रव्य के विकार जो ज्ञानावरणादि द्रव्य कर्म तथा औदारिकादि नौ कम को अपना मान आपपर का स्वामी वन रहा है। परन्तु इस जीव ने चेतन स्वरूप आत्मा को नहीं प्राप्त कर पाया। निश्चय से ये पर द्रव्यों में रत हो रहा है। निश्चय से चेतन स्वभाव वाला जो

आत्मा है उसकी ओर दृष्टि नहीं गई। जब यह ज्ञान हुआ कि यह पर समय है तब ज्ञानी जीव विचार करता है कि जिस प्रकार पानी अग्नि के संयोग से उष्ण है परन्तु हवा के लगते ही शीतल हो जाता है। उसी प्रकार मेरी आत्मा सब पदार्थों से भिन्न एक टंकोत्कीर्ण है और पर भाव तथा अन्य द्रव्यों से भिन्न स्वतंत्र है। ऐसा निज में ही अपने को देखता है। वह ही एक तत्व नित्य अविनाशी है शेष पर समय वर्ण संकर है क्योंकि विजाति के संयोग से उत्पन्न हुए हैं।

अज्ञान दशा में यह जीव पुद्गल कर्मों के फल को अनादी काल से भोग रहा है। कभी छोड़ता है, कभी भोगता है, वे कर्म पुद्गल द्रव्य के ही विभाव हैं और पर समय हैं।

इस प्रकार करते हुए अनन्त काल व्यतीत किये परन्तु स्व-समय जो सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र रूप मय है उसकी प्राप्ति इसको नहीं हुई। जब स्वसमय व परसमय स्वाध्याय के बल से जाना तब ज्ञानी हुआ और परसमयों का त्यागकर स्व-समय की दृष्टि हुई तब सब द्रव्यों से भिन्न एक अपने आत्मा को अपने में देखता है तथा सब पदार्थों में से एक शुद्ध चैतन्य स्वरूप ही एक पदार्थ है अन्य सब पदार्थ व्यभिचारी हैं क्योंकि ये परद्रव्य के संयोग सेउत्पन्न हुये हैं इसलिए हमारे से भिन्न हैं। ऐसा देखता है आप ही अपने में अपने को देखता है उसके ही रस का स्वाद लेता है।

●

शक्ति पूर्वक त्याग और तप

मैं उन अष्टम तीर्थंकर परमदेव को नमस्कार करता हूँ वे चन्द्रप्रभ अठारह क्षुधादि दोषों से रहित हैं तथा सर्वज्ञ वीतराग और हितोपदेशी हैं। यहां चंद्रप्रभ के चार विशेषग दिये हैं जिनमें ये गुण नहीं हों वे देव पने को भी प्राप्त नहीं होते हैं। क्षुधादि अठारह दोष सब संसारी जीवों में पाये जाते हैं जिनके ये दोष नष्ट हो गये हैं उनके ही सर्वज्ञ आप्त परम देव, तथा वीतराग और हितोपदेशी पनी संभव हो सकते है अन्य के नहीं।

बाह्य और अभ्यन्तर के भेद से तप दो प्रकार के हैं। इच्छाओं का त्याग रूप एक ही प्रकार का है ऐसा विवेकी जनों का तप जिनेन्द्र भगवान के द्वारा कहा गया है, वह विवेकियों के लिये कहा है अविवेकियों के लिये तप का विचार नहीं है। जो दो प्रकार का कहा गया तप है उसके छः भेद हैं। अब बाह्य तप के भेदों को कहते हैं। रसपरित्याग नाम का पहला तप है दूसरा तप पंचेन्द्रियों के विषयों का निरोध करना। प्रोषधोपवास यह तीसरा है तथा ऊनोदर यह चौथा तप है। व्रत परिसंख्यान करके चर्या को जाना यह पांचवां तप है। काय क्लेश नाम का छटवां तप है। इस प्रकार बाह्य तप छह प्रकार का जिनेन्द्र भगवान ने कहा है।

एक रस त्याग कर आहार लेना व दो रसों का त्याग कर आहार लेना व चार रसों का त्याग करके आहार लेना पांच

रसों का त्याग कर आहार लेना व नीरस आहार लेना यह रस परित्याग नाम का तप है। पंचेन्द्रिय सम्बन्धी विषय–वासना व भोजन की गृद्धता का त्याग करना भोजन करते समय जैसा सूखा, गीला, शुद्ध प्रासक भोजन करना। तथा रस युक्त हो या रस रहित हो उस भोजन को ऐषणा समिति के दोष न लगाते हुये आहार ग्रहण करना यह इन्द्रिय निरोध तप है। प्रोषधोप वास प्रथम दिन में एक बार भोजन करके चार प्रकार के आहार का त्याग अड़तालीस घंटे तक करना धूप व शीत की बाधाओं के रोग से पीड़ित होने पर भी आहार पान की इच्छा नहीं करना । न दूसरे जनों को आहार तुम करो ऐसी प्रेरणा ही करना । न भोजन करने की आज्ञा देना भोजन करने कराने वाले को अनुमोदन नही देना यह प्रोषाधोपवास नाम का तप है। प्रोषधोपवास के दिन सब प्रकार के शृंगारों का त्याग कर स्वाध्याय ध्यान में रत रहना तथा प्रमाद रहित होना चाहिये। उप=वास निकट। वास=निवास। अपने आत्म स्वरूप के निकट पहुँचना है। ऊनोदर अपनी इच्छा से अथवा उदर पूर्ति न करते हुए आहार कर्म करना यह ऊनोदर है सैय्यासन एक आसन से निश्चय होकर बैठना व एक करवट से शयन करना यह सैय्यासन नाम का तप है और भी काय क्लेश आलापन योग धारण करना, वर्षा योग धारण करना तथा शरीर में कुष्ट, भगन्दर, जलोदर, खसरा या राज रोग भस्मव्याधि हो जाने पर भी उस रोग का प्रतिकार नहीं करने का चिन्तवन करना। तथा शरीर में रोग हो जाने पर भी उसका इलाज नहीं करवाना यह काय क्लेश नाम का छटवां तप है। ऐसा जिनेन्द्र भगवान ने कहा है । तपसा निर्जरा च ऐसा आगम में आचार्य ने कहा है।सम्यक्त्व से कर्मों की निर्जरा होती है बंध नहीं होना

है। जहां पर बंध का अभाव है वहां पर तप के द्वारा कर्मों का क्षय ही किया जाता है तप से कर्मों की निर्जरा होती है।

आभ्यन्तर तपो के नाम प्रायश्चित, विनय, वैयावृत्ति, स्वाध्याय दीक्षा, कायोत्सर्ग ध्यान ये छह प्रकार के अंतरंग तप हैं।

अपने संयम व सम्यक्त्व में लगे हुए दोपों को गुरु के पास जाकर जैसा कुछ भी दोप लगा हो वैसा का वैसा ही कहना जैसे गुरु आज्ञा करें वैसा सहर्ष धारण करना यह प्रथम तप है। अपने से ज्येष्ठ गुरुओं का आदर सत्कार करना यह विनय तप है, कोई रोगी या रास्ता में चलने के कारण से व वृद्धावस्था या आतापन या मसोपवास करने के कारण से जिनका शरीर क्षीण हो गया है। उनके शरीर की वैयावृति भक्ति भाव से करना यह वैयावृत्ति नाम का तप है। स्वाध्याय करना स्वाध्याय के कालातिक्रमादि का विचार कर स्वाध्याय करना यह स्वाध्याय तप है। मन को विकृत करने वाले आर्तरौद्र ध्यानों का त्याग करना वचन से होने वाले कटुकादि वचनों को रोकना तथा काय से होने वाली कुचेष्टाओं को रोकना तथा अंतरंग वहिरंग उपाधियों से ममत्व भाव का त्याग करना। सर्व पदार्थों से भिन्न चेतन आत्मा को लक्ष में रखकर उस ओर उपयोग को लगाना यह ध्यान है अब इन तपों के लक्षण और भेदों को कहेंगे।

संसार में राग द्वेप और मिथ्यात्व सहित जीव के सतत् कर्मों का बंध होता रहता है। माया और असंयम के कारण यह जीव नित्य ही पापों का अथवा ज्ञानावर्ण, दर्शनावर्ण वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र, अन्तराय इन आठ कर्मों का चार प्रकार से बंध करता रहता है। वे बंध प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश बन्ध है इन चार प्रकार के बंध को प्राप्त होते हैं। बंध के चार भेद हैं सदि बंध अनादि बंध, ध्रुव बंध,

अध्रुव बंध । यह जीव कर्मों को आपही अपने द्वारा बुलाता है तथा वे कर्म, आत्म प्रदेशों में दूध पानी की तरह एक मेक हो जाते हैं। वे कर्म दो प्रकार के हैं एक पुण्य रूप दूसरे पाप रूप दोनों ही संसार के कारण हैं। जो बंध है वही संसार वृद्धि का मूल कारण है। जब संसार के कारणों को जाना तब मिथ्यात्व कर्म का तथा असंयम कषायों और प्रमादों का त्याग कर सम्यक्त्व प्राप्त कर संयम को ग्रहण कर अशुभ भावों का त्याग कर शुभ में प्रवृत्ति हुई। व्रत समिति गुप्तियों को निरतिचार पालन करते हुए जब राग द्वेष रहित हुआ संयम तप का आचरण किया तब अपने को सब द्रव्य भावों से भिन्न जान अपनी आत्मा में अपने को देखता है तथ अनुभव रूप ध्यान होता है जिस ध्यान के होते ही कर्मों का बंधन क्षीण होने लग जाता है। तब स्वात्म गुणों का अनुभव करने लगता है। संपूर्ण कर्म मल कलंकों का नाश हो जाता है तथा इस तप का श्रेय मोक्ष प्राप्त होता है। तप और ध्यान से ही मोक्ष होता है।

गुरू के पास जाकर माया, मिथ्यात्व को त्याग कर अपने सब दोषों को कहना तथा आलोचना के दस दोष हैं, उनको नहीं लगाना। समभाव धारण कर सब बड़े दोष कहना छोटे दोषों को नहीं कहना छोटे दोषों को कहना बड़े दोषों को नहीं कहना। दूसरों के द्वारा देखे गये दोषों को कहना, बिना देखे दोषों को नहीं कहना। महाराज अमुक दोष होने पर क्या प्रायश्चित होता है जब आचार्य ने दोष का प्रायश्चित कह दिया तब अपना दोष प्रकट करना तथा दूसरे त्यागी प्रायश्चित ले रहे हों तो उस समय अपने दोषों को धीरे से उच्चारण करना जिससे आचार्य सुन नहीं पावे या जब शोर हो रहा हो उस समय में आलोचना करें अथवा आचार्य दूसरे कार्य में संलग्न हो ऐसी अवस्था प्राप्त हो और अपने दोषों की आलोचना करना ये आलोचना के दस दोष

हैं। इन दस दोषों का त्यागकर समभाव धारण कर अपने छोटे वड़े देखे, बिना देखे, पूछे, बिना पूछे, सब दोपों को कह देना यह आलोचना नाम का तप हैं। हे गुरु आपके प्रमाद से मेरे पाप मिथ्या हों। मैं आगे कभी भी ऐसे पाप दोप नहीं करूँगा। तथा प्रमाद कभी नहीं करूँगा आगे प्रायश्चित तप के दस भेद हैं उनको कहेंगे।

(अपने प्रमाद से लगे हुए) व्रत, शील, समिति, गुप्ति, आवश्यकादि मूल गुण व उत्तर गुणों की एक देश विराधना व सकल देश विराधना रूप प्रमाद व कपायों के कारणों के मिलने पर जो दोष उत्पन्न हुए हैं उन दोपों को गुरु के सामने जाकर जैसा का तैसा कहना जिस प्रकार छोटा बच्चा अपनी माँ के पास जाकर अपने कृत्य और अकृत्यों को निशंक हो कह देता है वह कुछ भी नहीं छिपाता उसी प्रकार अपने दोषों को आचार्य के सामने कहने को अथवा मन में भी ग्लानि होती है वह आलोचना है। पूर्व में लगे हुए दोषों को नाश करने के लिए गुरु के पास बैठकर प्रतिक्रमण करना। मेरे पाप हैं वे मिथ्या हों। आलोचना सहित प्रतिक्रमण करना उसको ही तरु भय कहते हैं। विवेक छह आवश्यक क्रियाओं को यथा काल में करना व दोषों का जिस प्रकार से विनाश हो उस प्रकार से अपनी आवश्यक क्रियाओं का निर्दोष पालन करना यह विवेक है। यथा काल क्रियाओं को करना यह विवेक नाम का तप है। अपने भावों की विशुद्धता करने का उद्योग करना तथा समिति व गुप्तियों को भलो प्रकार पालन करते हुए सामायिकादि आवश्यक क्रियाओं में संलग्न रहना यह व्युत्सर्ग तप है। आत्मा के हित को विचार कर जिन से कर्मागम होता हो उन आस्रवों को रोक कर शुभ व शुद्ध भावों को प्राप्त होने को उत्सुक रहना यह तप

है। जो दीक्षा धारण की थी कोई दोष उत्पन्न होने पर गुरु उस दोष का परिहार करने के लिए एक माह की दीक्षा छेद, दो माह, छह माह इत्यादि दीक्षा छेद करते हैं। तव अपने से नव दीक्षितों को नमस्कार करना यह तपश्छेद नाम का तप है। कोई मोटा दोष जव हो जाय तव आचार्य उसको संघ से वाहर कर देते हैं व दूसरे के संघ में भेज देते हैं। वहां के संघ पति आचार्य उनको प्रायश्चित नहीं देते वे अन्य आचार्य के पास भेज देते हैं वे भी आचार्य उसको प्रायश्चित नहीं देकर स्वगुरु के पास भेज देते हैं तव गुरु उसको जैसा प्रायश्चित देते हैं उसको वड़े उत्साह से मस्तक झुका कर स्वीकार करते हैं तथा आचार्य की आज्ञा से छह माह एक साल को संघ से वाहर निकाल देना व समय पूर्ण होने पर पुनः संघ में आ जाना इसको छेदोपस्थापन कहते हैं। यह गुरुओं व आचार्यो के वचन के आश्रित है इस प्रकार प्रायश्चित नाम के दस प्रकार संक्षेप से कहे आगे विस्तार से अन्य ग्रन्थों से जानना।

मेरे अज्ञान व प्रमाद कषाय तथा अविवेक असंयम के कारण मिलने से जो पाप उत्पन्न हुए है वे पाप हे प्रभो आपकी कृपा से मिथ्या हों। जो पूर्व में उपार्जन किये गये पाप उन पापों की निन्दा गर्हा पूर्वक मन में ग्लानि होना तथा अपने मन में यह हाय मेरे द्वारा यह वहुत बुरा हुआ यह मेरे योग्य नहीं था। मैंने पर वस्तुओं के लिये आर्तध्यान किया होगा या रौद्र ध्यान किया होगा तथा राग द्वेप की वृद्धि की होगी, दुर्भावनायें की होगी। इहलोक शल्य परलोक शल्य आहार संज्ञा, भय संज्ञा, मैथुन संज्ञा परिग्रह संज्ञा, क्रोध कषाय से, मान कषाय से, माया कषाय से लोभ कषाय से, कृष्ण लेश्या, नील लेश्या कापोत लेश्या से तथा आरम्भ परिणाम से परिग्रह परिणाम से प्रेय शल्य क्रिया

शल्य से निर्माण शल्य, मिथ्या दर्शन शल्य, माया शल्य, निदान शल्य से मिथ्या दर्शन परिणाम से पापयोग परिणाम से काय की अशुभ क्रिया होने के कारण से। तथा रसना, घ्राण, चक्षु, स्पर्शन इन्द्रियों के कारण से जो मैंने दुष्कृत (पाप) उपार्जन किये हों वे मेरे पाप हे भगवान! आपकी कृपा से मिथ्या हों। पंच महाव्रत, पंच समिति, तीन गुप्ति छह आवश्यक कार्य तथा पंचेन्द्रिय निरोध रूप मूल गुण तथा उत्तर गुण चौरासी लाख, अठारह हजार प्रकार का शील तथा बारह प्रकार के संयम में तथा ज्ञान में, दर्शन में, चारित्र में, बाइस परीषहों में, पच्चीस भावनाओं में, पच्चीस क्रियाओं में मेरे प्रमाद से जो दोष लगे हों वे सब पाप मिथ्या हों। भविष्य में इन पापों को कभी भी नहीं करूंगा ऐसी अन्तरंग भावना सहित जो प्रतिक्रमण है वह सब पापों को नाश करने में समर्थ होता है।

आलोचना करने से सर्व दोषों का नाश नहीं होता है कुछ ही दोषों की शुद्धि हो जाती है। बचे हुए दोषों की शुद्धि प्रतिक्रमण से ही होती है। इसे आचार्यों ने तदभय नाम का तप कहा है।

पंचेन्द्रियों के विषय भूत रूपी वर्णादिक व स्त्री पुत्रादिक चेतन तथा ग्राम, नगर आदिक अचेतन, चेतन तीनों प्रकार की सम्पूर्ण वस्तुओं से ममत्व हटाकर तथा पंचेन्द्रियों के विषय भोगों से दृष्टि को हटाकर तथा पर जान उनसे ममत्व भाव का त्याग करना। कर्मों के उदय और उदय फल को जानकर अपने स्वभाव से विचलित नहीं होना तथा शरीर से ममत्व टूटकर सात भयों का त्याग करके जंगल या एकान्त शान्त स्थान में बैठकर अपने को अपने आत्मा में निश्चल करना तथा आत्मा में लीन होना यह व्युत्सर्ग या ध्यान है। यह व्युत्सर्ग प्राचीन या

नये कर्मों को नाश करने वाला है।

गुरु की आज्ञा से एक माह की दीक्षा कम कर देना छह माह वर्ष आदि की दीक्षा छेद कर देना जो पीछे के दीक्षित थे अब वे वड़े हो गये। तव उनको वड़ा मानकर नमस्कार करना। सम्यक्त्व भावना सहित उत्साह सहित अपनी आत्मा का हित करना जो गुरु ने प्रायश्चित दिया है उसको ग्रहण कर अपने को धन्य मानना। इस दीक्षा छेद करने से मन की ग्लानि दूर होती है और चारित्र में उत्सुकता आती है प्रमाद का नाश होता है। अशुभ की प्रवृत्ति हट कर शुभ में प्रवृत्ति होती है। तथा गुरु आज्ञा से संघ से बाहर करना एक साल, मास, पक्ष रात्रि दिवस के लिए परिहार तप है। पुनः उनके दोषों की शुद्धि कर संघ में रख लेना यह परिहार और उपस्थान नाम का तप है। विवेक तप यह है कि मन, वचन, काय गुप्तियों द्वारा आत्मा को दुष्कर्मों से बचाना तथा छह आवश्यकों का निर्दोष पालन करना तथा व्रत उपवासों का निरतिचार पालन करना विवेक तप है।

एकान्त स्थान में बैठ कर तथा इच्छाओं का निरोध करके शरीर से ममत्व छोड़कर कायोत्सर्ग के दोषों से रहित होते हुए आत्मा में स्थिर भूत होना, तथा शरीर से विरक्त होकर चारित्र का आचरण करता है वह निश्चय चारित्र ही संसार बंधन का नाश करने वाला है। जो तेरह प्रकार का चारित्र कहा है वह चारित्र तो अशुभ भावों से जीव की रक्षा करता है, परन्तु संसार के दुःखों से छुड़ाने वाला नहीं। जब अपने स्वरूप का सम्यक्ज्ञान कर लेता है तब बाह्य क्रियाओं को भी उपचार से करता है। निश्चय से अपने आत्मा में ही आचरण करता है। णमोकार मंत्र को एक बार स्वासोच्छ्वास तीन बार लेने पर

एक वार इसी प्रकार नौ वार श्वासोच्छ्वास करने पर एक कायोत्सर्ग होता है। णमो अरहंताणं यहां तक स्वास भीतर की ओर खीचना, णमो सिद्धाणं यहां तक जो स्वास खींची थी उसको बाहर निकालना तथा णमो आइरियाणं यहां तक भीतर को खीचना, णमो उवज्झायाणं यहां तक पुनः बाहर निकालना, णमो लोए यहां तक स्वास को भीतर खीचना सव्वसाहूणं यहां तक उच्छ्वास बाहर निकालना इस प्रकार एक णमोकार मंत्र के अंतरगत तीन स्वास्वोच्छ्वास हो जाते हैं नौ वार णमोकार मंत्र जपने पर एक कायोत्सर्ग होता है कायोत्सर्ग के दोष आगम से जान लेना चाहिये।

एक महीने तथा चार महीने व सांवत्सरिक,पाक्षिक दैवसिक, रात्रिक भेद से प्रतिक्रमण के स्वासोच्छ्वास क्रमशः दैवसिक के १०८ स्वासोच्छ्वास रात्रि के ५४ स्वासोच्छ्वास पाक्षिक के ३०० स्वासोच्छ्वास तथा मासिक और चातुर्मासिक के ४०० स्वासोच्छ्वास सांवत्सरिक के ५०० स्वासोच्छ्वास जानना योग्य है। एक कायोत्सर्ग में नो वार णमोकार मंत्र के २६ श्वास और उस्वास होते हैं।

शौच या लघु शंका जाने के पश्चात एक कायोत्सर्ग करना चाहिये तथा शौच जाने के बाद भी आलोचना ईर्या पथ सहित सिद्ध भक्ति पूर्वक कायोत्सर्ग करना चाहिये। देव पूजा के समय जहां कायोत्सर्ग का विधान हो वहां पर इसी प्रकार करना चाहिये। तथा भक्ति पढ़ते समय व शास्त्र के स्वाध्याय के पहले व पीछे कायोत्सर्ग करना चाहिये। तथा प्रतिक्रमण के समय पांच बार कायोत्सर्ग करने का विधान है। गुरु वन्दना के समय यदि आचार्य शास्त्रज्ञ हों तो सिद्ध, श्रुताचार्य भक्ति सहकायोत्सर्ग करना चाहिये। तथा देव दर्शन, चैत्य वन्दना के

समय भी कायोत्सर्ग करने का विधान है विशेष भगवती आराधना से जान लेने चाहिये।

ज्ञानावर्ण, दर्शनावर्ण, मोहनीय, अन्तराय तथा नाम गोत्र, वेदनीय तथा आयु इन आठ कर्मों से रहित हो गये हैं। जो पंचपरावर्तन रूप द्रव्य ,क्षेत्र, काल, भव, भाव ऐसे पांच प्रकार के दुःखों से भरे हुए समुद्रों से पार हो गये हैं तथा जिनके कषायें थी उनका क्षय कर दिया है। जिनको अन्तिम अवस्था प्राप्त हो गई है। तथा जिनका कल्पकाल करोड़ों बीत जाने पर भी पुनः संसार में नहीं आने वाले हैं। ऐसी मोक्ष सुख रूपी लक्ष्मी जिसका कभी भी अन्त नहीं ऐसे अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त वीर्य व अगरू, लघु, सूक्ष्मत्व, अवगाहनत्व, अव्याबाधत्व ऐसे आठ गुणोंको प्राप्त हुए हैं वे सिद्ध भगवान हम सब के लिए कल्याणकारी हों।

भावार्थ—जब जीव संसार बंधनों को तोड़कर निज स्वभाव में स्थिर हो जाता है वह पुनः संसार में आवेगा क्या? इसका यह उत्तर है कि जो अरण्ड बीज अपने स्थान को छोड़ गया वह पुनः क्या उस अरण्ड के गला के भीतर आकर स्थित होता है? उसी प्रकार सिद्ध पद को प्राप्त हुए आत्मा पुनः संसार में जन्म नहीं लेते। जिस प्रकार चावल और धान जब तक एक साथ रहे तब तक बीज पौधा और पौधा बीज का सम्बन्ध बराबर चलता रहता है जब धान चावल दोनों की एक पर्याय है अथवा एक रूप दिखाई देते हैं जब छिलका निकल गया चावल भिन्न हो गया तब चावल को बोने पर अंकुर की उत्पत्ति नहीं हो सकती। उसी प्रकार जो सिद्ध अवस्था को प्राप्त हुए हैं वे सम्पूर्ण कर्मों के क्षय होने पर ही हुए है इसलिए वे सिद्धात्मा अनन्त कल्प काल बीत जाने पर भी संसार में जन्म मरण को

प्राप्त नहीं होते हैं।

यह संसार इच्छारूपी खारे पानी का समुद्र है उस खारे पानी को पीने की कोई इच्छा नहीं करता है। परन्तु दुष्कर्मों को दिन रात करता है जिससे पापों का उपार्जन कर सुख की अभिलाषा करता है। परन्तु सुख की प्राप्ति नहीं होती तो भी अज्ञानी जीव मिथ्याचरण व आरम्भादि कर तपों को तपता है। पंचाग्नि तप व ऊर्ध्व मुख, अधो मुख इत्यादि तपों को करता है। परन्तु इच्छाओं को नहीं छोड़ता। उस मिथ्या तप के फल की इच्छा करता है। परन्तु उसको जिनेन्द्र भगवान के द्वारा कहा हुआ इच्छा निरोध तथा आरम्भ हिंसादि पापों से रहित जो तप धर्म है वह रुचिकर नहीं होता। इसलिए जो कल्याण कारी मोक्ष मार्ग है उसकी तरफ नहीं देखता है पुनः संसार में पाप करता है परन्तु अविनाशी श्रेयस्कर मोक्ष सुख नहीं पाता है। हे बुद्धिमान! विचार कर कुमार्ग का त्याग कर जिन मार्ग की शरण लो जो शिव सुख का देने वाला है और जो मोक्ष में पहुँचाने वाला है।

यह संसार रूपी समुद्र इच्छा रूपी खारे जल से भरा हुआ है। इसके पानी को संसारी प्राणी पीते हैं तो भी प्यास की बाधा बुझती नहीं प्यास तो बढ़ती जाती है। जब खारा पानी कोई पीता है तब उस समय तो मालूम होता है कि अब मेरी प्यास शान्त हो गई किन्तु पीने के पश्चात और अधिक दाह उत्पन्न हो जाने से प्यास से व्याकुल होता है, दुःखी होता है।

उसी प्रकार जीव को काम भोगों की इच्छायें लगी हुई हैं उन इच्छाओं की पूर्ति व शांति के लिये पंचेन्द्रिय विषयों को भोगता है जिससे पुनः आकुलता बढ़ जाती है परन्तु इच्छायें कभी कम नहीं होती हैं। आचार्य कहते हैं कि हे ज्ञानी आत्मा

इन विषय भोगों की इच्छाओं को शीघ्र ही छोड़। अभी समय है इन वासानाओं के सेवन करने में तनिक भी लाभ नहीं जो सुकृत पुण्य मार्ग है उसको ग्रहण कर जो दया सब धर्मों की मूल है उस दया को पालन कर जिससे दुःखों का क्षय हो और सुख की प्राप्ति हो। अब मत डर सब पापों का त्याग कर इच्छायें ही संसार है तथा इच्छाओं की पूर्ति नहीं हो सकती है। मोक्ष से डरना नहीं चाहिये।

अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय तथा साधु के मूल गुण और उत्तर गुणों से युक्त हैं। अरहंतों के छयालीस गुण दस जन्म के अतिशय दस ज्ञान के अतिशय तथा चौदह देव अतिशय अष्ट प्रातिहार्य और चार अनंत चतुष्ट्य ये सब ४६ गुण अरहंत के होते। १हैं शरीर से पसीना नहीं निकलना २समचतुरस्र संस्थान ३ वज्र वृषभनाराच संहनन ४ सुगंधित शरीर ५ मधुर वचन ६ श्वेत रुधिर का होना ७,१००८ आठ लांछन:— (१०८) चिन्ह, ९०० व्यंजन कुल १००८ होते हैं ८ सुन्दर रूप, ९ अनंतवल, १० मल नहीं। केवलज्ञान के अतिशय सौ-सौ योजन तक चारों तरफ सुभिक्ष १ आकाश गमन, २ अदयाका अभाव ३ उपसर्ग नहीं, ४ कवलाहार नहीं. ५ चार मुख दिखाई देना, ६ सर्व विद्याओं के ईश्वर, ७ छाया रहित, ८ बालों का न बढ़ना, ९ नाखूनों का न बढ़ना, १० आखों में टमकार न का होना केवल ज्ञान के दस अतिशय हैं। १ देव कृत अर्धमागधी भाषा, २ सकल जीवों में मैत्री भाव, ३ वस्तुओं के फल-फूल एक साथ आना, ४ दर्पण के समान भूमि का होना,५ मन्द-मन्द सुगंध हवा चलना,६ सब जीवों के आनंद ७ कंटक रहित भूमि, ८ गंधोदक की वृष्टि, ९ पाद युगल के नीचे २२५ कमलों की रचना, १० आकाश निर्मल,११ देवों का जयकार शब्द,१३ धर्म चक्र,१४ आठ मंगल द्रव्य ये देव कृत १४अतिशय हैं।

अनंत दर्शन, अनंत ज्ञान, अनंत सुख, अनंत वीर्य ये चार अनंत चतुष्टय हैं। आठ प्रातिहार्य सिंहासन दिव्यध्वनि मण्डल चमर छत्र अशोक वृक्ष देवों द्वारा पुष्पों की वर्षा दुदुंभिनांद ये अरहंत के ४६ गुण हैं। सिद्धों के आठ गुण अतनं ज्ञान, अनंत दर्शन, क्षायक सम्यक्त्व, अनंत वीर्य, सूक्ष्मत्व, अगुरु, लघुत्व. अव्याबाधत्व, अवगाहना इस प्रकार आठ हैं। आचार्य के ३६ गुण पंचाचार, दर्शनाचार, ज्ञानाचार, तपाचार चारित्राचार, वीर्याचार ये पांच तथा बारह प्रकार का तप, उत्तम क्षमादि दस धर्म, तीन गुप्ति छह आवश्य कुल ३६ होते हैं। उपाध्याय के २५ ११ अंग चतुर्दश पूर्व ये हैं ये साधु के २८ मूलगुण। पांच महाव्रत, पांच समिति पचेन्द्रिय निरोध छह आवश्यक केशलोंच करना, अवस्त्र अस्नान, अदंत धोवन, एक बार भोजन खड़े-खड़े भोजन करना, भूमि पर शयन करना ये अट्ठाईस मूलगुण हैं। इन गुणों से जो युक्त वे पंचपरमेष्ठी ही ध्यान करने योग्य हैं। इसलिये हे भव्यात्मन ! इन पंचपरमेष्ठियों के स्वरूप का चिन्तवन व ज्ञान करने से अपना स्वरूप जाना जाता है जिससे तेरे को ध्यान की सिद्धि होगी। ग्रन्थकार कहते हैं कि हम भी उन पंचपरमेष्ठियों को मन वचन काय की शुद्धता पूर्वक नमस्कार करते हैं वे हमारी रक्षा करें।

अरहंत और सिद्धों को सकल गुणों का भण्डार कहा है। परन्तु आचार्य, उपाध्याय सब साधुओं को सकल गुण निधान नहीं कहा इसका का कारण यह है अरहंत भगवान ने तो चार घातिया कर्मों का नाश कर दिया है जिससे उनके सब गुण प्रकट हो गये हैं और वे जीवन मुक्त हैं। सिद्ध भगवान के आठों कर्मो का सर्वथा अभाव हो गया हैं। वे सिद्ध भगवान औदारिकादि नो कर्म रूप शरीर से भी रहित हैं। उन्होंने तो अपने

पुरुषार्थ का फल पा लिया है। परन्तु आचार्य, उपाध्याय, सर्व साधु जो वे अभी साधक अवस्था में ही स्थित हैं। वे सब लोक में स्थित हैं। सिद्ध भगवान लोक के अन्त में विराजमान हैं। जिनकी सेवा तीन लोक के प्राणी करते हैं व उस पद की इच्छा करते हैं हे भव्य उनका जैसा स्वरूप है वैसा स्वरूप अपने में उतार। जिससे भव बन्धन से मुक्ति मिले।

गुरु के पास जाकर विनय सहित बैठे और नमस्कार करने के पश्चात् अपने प्रमाद कुभावों के कारण से संयम में लगे हुये दोषों को कहे कि हे भगवन! मेरे से इस प्रकार दोष हुआ है उसका प्रायश्चित कर अपनी आत्मा की उत्सुकता पूर्वक शुद्धि करने के लिये अन्तरंग और बहिरंग दोनों प्रकार के परिग्रहों को त्याग करके शरीर के ऊपर से ममत्व का त्याग कर अभ्यन्तर ध्यान योग में स्थिर हो जिसके प्रभाव से पूर्वोपार्जित कर्मों का क्षय होता है इसी से साध्य की सिद्धि होगी।

अब मेरा किसी भी प्राणी से वैर नहीं है मैं सब जीवों में समता भाव धारण करता हूँ मेरा कोई भी वैर नहीं है। अब मैं उन इच्छाओं का त्याग करता हूँ जिनके कारण तूने अनन्त संसार में जन्म-मरण के दुःख सहे। तथा इस राग को भी त्याग करता हूं जो सतत दुःख देता है। तथा सब जीवों को मैं क्षमा करता हूँ। मेरे साथ यदि दुर्व्यवहार किया हो उसको अब मैं नहीं देखता हूँ और क्षमा करता हूँ। अब एक इन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय पर्यन्त सब जीव मुझे क्षमा करें। अब मेरा इस संसार में कोई भी वैरी नहीं है न मैं भी किसी का वैरी हूं। मेरे सब मित्र हैं, मैं भी सब जीवों के साथ मैत्री भाव को धारण करता हूँ। राग बन्ध का प्रदोष हर्ष भाव व दीन भाव कुभावों का त्याग करता हूँ क्योंकि ये सब संसार की वृद्धि के ही कारण

हैं। तू अज्ञान मिथ्यात्व के साथ में एकता मान रहा है कि ये आहार, भय, मैथुन और परिग्रह चारों ही मेरे हैं मैंने की थी और कर रहा हूँ। तथा मेरे पुत्र व स्त्री, माता, पिता, पुत्री, बहिन धन व धान्य, शरीर इत्यादि वस्तुयें हैं वे सब अवश्य ही वियोग रूप हैं जिनका संयोग है उनका वियोग है जिनकी उत्पत्ति होती है उसका ही विनाश अवश्य है। इसलिये परवस्तुओं के वियोग या संयोग में खेद मत कर, क्योंकि इष्ट व अनिष्टपना यह अपनी मान्यता है यह अज्ञान दशा है परन्तु जितनी द्रव्यें होती हैं उनमें अनेक पर्यायें उत्पन्न होती हैं वे पर्यायें ही विनाश और उत्पत्ति रूप होती हैं परन्तु द्रव्य की सभी अवस्थायें ध्रोव्य रूप हैं। इसलिये हे भव्यात्मन ! तेरा वियोग और संयोग व अन्य पदार्थों की पर्यायों को इष्ट अनिष्ट मान्यता करना ही दुःख का कारण है इसलिये इस मान्यता का त्याग करना ही तप हैं।

हे भव्य यह अज्ञान मिथ्यात्व का ही दोष है कि अन्य भिन्न द्रव्य और उनकी होने वाली अनेक पर्यायों को अपना मान उनमें मूर्छित (आसक्त) हो रहा है। इस संज्ञा आहारादि का आप ही स्वामी बना बैठा है यह कितनी महान भूल कर रहा है। चारों संज्ञाओं के कारण ही यह दुःखी होता है और वे चारों ही संज्ञायें वृत्ति को ही प्राप्त हो रही हैं। इसी कारण को देखकर आचार्य कहते हैं कि बड़े ही खेद की बात है कि जो शास्वत अविनाशी अचिंत्य गुणों वाला है तथा दर्शनोपयोग व ज्ञानोपयोग स्वरूप है। तथा सम्यक्त्वादि अनन्त गुणों का एक पिण्ड अविनाशी आत्मा है उस आत्म स्वरूप की ओर दृष्टि डालकर देख परवस्तुयें हैं वे तेरी नहीं उनके राग को त्याग कर अपनी सम्पत्ति की सम्भाल, उससे ही उत्तम सुख प्राप्त होगा।

साधु समाधि

जो मिथ्यात्वादि व कषायों से युक्त होकर मरण करते हैं तथा विभावों में रत हैं वे शरीर को दिनोरात सुखाते हैं परन्तु कषायों का व मिथ्यात्व और मूर्छा व इच्छाओं का त्याग नहीं करते हैं तथा अपने को तपस्वी मानते हैं। वे धर्म की वृद्धि व धर्म फल की इच्छा से मरण करते हैं यह विभाव है। जब सब पर को पर जाना स्व को स्व जाना तब मिथ्यात्व कषाय संज्ञाओं की तरफ से मुख मोड़कर मूर्छा भाव का त्याग कर रत्नत्रय रूप आत्मा का अनुभव करते हुए औदारिक शरीर का त्याग करता है यह समाधिमरण है। इस मरण के तीन भेद हैं भक्त प्रत्याख्यान, इंगिनीय मरण तथा प्रायोगमन मरण है।

आगे सल्लेखना समाधि के दो भेद कहे गये हैं कि एक कषाय समाधि दूसरी शरीर त्याग समाधि है तथा रत्नत्रय में रत होना रत्नत्रय कहिये सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् चारित्र इन गुणों की प्रति समय विशुद्धि का होना और कर्मों का आस्रव बंध का संवर होना तथा संवर पूर्वक पूर्व में उपार्जन किये हुये कर्मों का फल देकर निर्जीर्ण हो खिर जाना। इस प्रकार सल्लेखना करनी चाहिये। जो मुनिराज रोग होने से व कृष हो गया है गात जिनका थक गया या क्षीण हो गया है तथा वृद्ध अवस्था उपलब्ध हुई है ऐसी अवस्था विशेष पाकर मुनिराज शरीर से राग त्याग कर आत्म विशुद्धि करते हैं। उस

काल में धर्मात्मा और धर्म के धारक उन मुनिराजों की यथा काल में वैयावृत्ति करते हैं। आहार की वेला में उनके शरीर की मान्यता के अनुसार आहार व औषध दान देते हैं। उनके शरीर पर लगे हुये मलों को स्वच्छ करते हैं उनका फलक बैठने का व सोने का संस्तर को यथा योग्य विधि विवेक सहित उठाना और बिछाना तथा शरीर का मर्दन करना शास्त्र को पढ़कर सुनाना अथवा धर्मोपदेश देना यह वैयावृत्ति है। हाथ पैरों का दबाना, मल मूत्र का दूर करना, उनसे घृणा नहीं करते हुये मलों को स्वच्छ करना यह साधु समाधि है। ईर्षा भाव व पक्षपात रहित हो उनके गुणों में अनुराग हो और अपने अवगुणों का त्याग करे यह साधु समाधि है।

मुनियों के रहने योग्य क्षेत्र व गुफा वस्तिका दान देना तथा उपकरण व शास्त्र दान देना यथा विद्वान को बुलाकर विद्या अध्ययन करवाना तथा अभय दान देना चाहिये। आहार दान, औषध दान देना व यदि किसी कारण से साधु का मन चलायमान होता हो तो धैर्य बंधाना चाहिये कि हे मुनि हम सब आपके ही हैं हम अन्य के शिष्य नहीं जो आप आज्ञा देंगे वह हम मस्तक पर धारण करेंगे तथा अब हमको आज्ञा दीजिये वह कार्य हम करें। यदि शरीर में वेदना होती हो तो उपचार कर उसका निवारण करने का प्रयत्न करना चाहिये। हाथ पैर शरीर के संगों को हाथ के पंजे से धीरे-धीरे मर्दन करना हाथ पैर दबाना। उन मुनिराज के साथ गोवच्छ की तरह प्रेम करना चाहिये जिस प्रकार गाय अपने बच्चे को किसी को मारने नहीं देती वह स्वयं ही मरने को सम्मुख होती है। इसी तरह धर्मात्माओं का कर्तव्य है वे धर्मात्मा से प्रेम करें। स्थिति-करण का ध्यान रखकर विधि पूर्वक करना चाहिये। वैयावृत्ति

करते समय भी इतना ध्यान आवश्यक है कि क्षेत्र उष्ण या शीतल या सम है। काल वर्षा या शीत व गर्मी का काल है इसको लक्ष्य में रखकर वैयावृत्ति करना चाहिये। तथा साधु के शरीर का ध्यान रखना यह साधु समाधि है।

जैसी साधु की शरीर की स्थिति हो वह पहले जान लेने योग्य है। किसी साधु के शरीर का स्वभाव उष्ण होता है किसी की प्रकृति शीतल होती है। किसी की वात प्रकृति है तो किसी की वात कफ की है। किसी की उष्ण प्रकृति होती है इस प्रकार अनेक भेद शरीर के प्रकृति हैं। कहीं से चलकर आया हो जिस शरीर की गति क्षीण हो गई है अथवा थकावट आ गई है तथा रोगी हो । तथा जिसके शरीर से मल वहता हो कुष्ट कांस, भगन्दर. जलोदर, भस्मव्याधि आदि भयंकर रोग हो गया है उस साधु की वैयावृत्ति करना, औषधि देना, नव दीक्षित व पुराने दीक्षित तथा वृद्ध मुनि, तपस्वी मुनि, प्रसिद्ध मुनि, इन मुनियों की रक्षा करो यह वैय वृत्ति है। जिस प्रकार माता-पिता जन्म से वच्चे की जिस प्रकार उसकी देखभाल करते हैं वे वच्चे को गीले में से उठाकर सूखे में सुलाते हैं तथा रोग हो जाने पर उसकी वेदना जानकर उसको दूर करने का प्रयत्न करते हैं। वे मुनिराज भी अपने में सावधान रहते हुए (असमाधिः) विशेष उत्कृष्ट समाधि ध्यान रखते हैं। जो समाधि तीर्थंकरों की या केवलियों की जिस प्रकार समाधि हुई उसी प्रकार हमारी भी हो। शरीर स्थिति जान ली गई। तथा यह शरोर तो यमराज का ग्रास होने वाला है देश और समाधि की विधि अवश्य जान लेना योग्य है विना जाने कैसी समाधि कैसी वैयावृत्ति होगी ? जिन्होंने अपने शरीर की स्थिति जान ली है वे मुनि शरीर से राग त्यागकर निर्ममत्व हो रत्नत्रय में स्थित होना समाधि है।

जब माता के गर्भ से पुत्र उत्पन्न (हुआ) होने पर माता-पिता पुत्र का जिस प्रकार प्रमाद रहित होते हुये बालक के सब दुःखों का ध्यान रखते हैं। उसी प्रकार साधु की वैयावृत्ति करना चाहिये। आहार पानी तथा औषधि, खाद्य, स्वाद्य, लेह्य, पेय इस प्रकार दान देना चाहिये। ज्ञान, दान व उपकरण कमण्डलु पिच्छिका पुस्तक इत्यादि दान देना, स्वाध्याय के साधन एकत्र कर देना, तथा हितोपदेश देना, थोड़ा देना, अतिथि को जिससे निराकुलता प्राप्त हो उसी प्रकार वस्तिका व आसन फलक पाटा आदि की व्यवस्था करना यह वैयावृत्ति है।

आहार दान देते समय पांच सून नहीं करना चाहिए। पीसना, झाड़ू देना ओखली में धान्य कूटना, अग्नि जलाना तथा कुआ या बावड़ी में पानी भरना ये पांच सून नहीं करना चाहिये। जब मुनिराज चर्या के निमित्त गृहस्थ के घर पर पहुँचे तभी पीसना इत्यादि कार्य आरम्भ करना नहीं चाहिये। मन शुद्ध, वचन शुद्ध, काय शुद्ध, आहार पानी शुद्ध है। पड़गाहन उच्चासन पूजा वन्दना ये नौ भक्तियां हैं इनको मन, वचन, काय, कृत कारित, अनुमोदना पूर्वक करनी चाहिये इसलिये इनको नव कोटि शुद्ध कहते हैं। सप्तगुण-निर्लोभी, सन्तोषी, दयावान, भक्त सज्जन क्षमावान और कलुषता रहित ये गुण दाता के कहे गये हैं। इन गुणों से युक्त दाता श्रावक जगत में श्रेष्ठ माना जाता है। वह मोक्षमार्ग में लवलीन है तथा निश्चय से वह दाता शीघ्र ही मोक्ष का पात्र बन जाता है। दान देने वाले को यह अवश्य ध्यान देने योग्य है कि जैसी अपनी शक्ति हो उस शक्ति के अनुसार ही दान देने का विधान है। आगे मुनिराज विचार करते हैं—

हे भव्यात्मन तूने अनन्त काल से इन पुद्गलों को भोगकर

अनेक वार छोड़ दिया परन्तु उससे आत्मा की तृप्ति नहीं हुई। जिस प्रकार अग्नि में कितनी घास लकड़ी डालते जाओ वह और भड़कती जाती है वह यह कभी नहीं कहती बस अब नहीं चाहिये। समुद्र सब नदियों के खारी व मीठे पानी को पी लेता है परन्तु आज अनन्त काल बीत गया नदियां भी पानी लाती-लाती थक गयी परन्तु अभी तक समुद्र की प्यास की तृप्ति नहीं हुई। आशायें कभी शान्त नहीं हो सकती। उसी प्रकार पंचेन्द्रियों के विषय की अभिलाषायें कदापि शान्त नहीं हो सकती। जितने विषय भोगों का अधिक मात्रा में सेवन किया जाता है उतनी ही मात्रा में आकुलता बढ़ती जाती है। परन्तु इतना भोगने पर भोगों से इन्द्रियों की शान्ति कहीं पर संसार में नहीं। तथा काम भोगों का सेवन करने पर भी शान्ति नहीं हो सकती है आगे उसी भावना का स्पष्टीकरण करते हैं।

यह राग है सो ही संसार है संसार में जीवों को सदा भय लगा ही रहता है। जिस शरीर पर राग है इसलिए इस शरीर के विनाश का इस जीव को भय लगा हुआ है कि मेरा मरण न हो जावे। तथा द्वेष की वृद्धि हो जाती है तथा रागद्वेष कषाय से जीव प्रकृति बंध और स्थिति बंध कर लेता है। तथा अनेक प्रकार की पुद्गल कर्म वर्गणायें आत्मा के प्रदेशों में बंध को ही प्राप्त होती हैं तथा संसार की वृद्धि होने लग जाती है। रत्नत्रय का प्रकाश करना तथा रत्नत्रय स्वरूप अपनी आत्मा को जब पाना तब सब पर द्रव्यों से राग और द्वेष को दूर कर अपने गुणों का प्रकाश करना यह बोधि है। निश्चय से परवस्तु जो राग द्वेष हैं उनको उपयोग में से हटा कर अपने आत्म स्वरूप रत्नत्रय का ध्यान बल से प्रकाश करना यह बोधि है। अथवा केवल ज्ञान को प्राप्त होना यह बोधि है।

जो भाई, माता, काका पिता, दादा, पर दादा, नाना इत्यादि जितने बांधव हैं वे सब अपना-अपना काल पाकर विनाश को प्राप्त होंगे वे कदापि भी तेरे नहीं होंगे। यह शरीर है यह भी प्रति समय अपनी छटा बदल रहा हैं इस शरीर में भी स्थिरता नहीं है। यह एक दिन अवश्य ही विनाश को प्राप्त होगा। परन्तु जो तेरा परवस्तु के प्रति मोह राग द्वेष है यह महा गहन जंगल के समान है जिस प्रकार कोई पाथिक गहन जंगल में प्रवेश करता है और दिशा भूल जाता है रास्ता भी उपलब्ध नही होता है उस जंगल में ही भ्रमण करता है तथा सिह, बाघ, हाथी आदि के भय से दुःखी होता है, इसी प्रकार ये प्राणी भी संसार में तथा चारों गतियों में जन्म मरण के दुःखों को भोगता है तथा भ्रम में पड़कर अपने घर के मार्ग को प्राप्त नहीं होता है। तथा यह जीव संसार में भ्रमण करता हुआ पर में महत् बुद्धि करके अपने आत्म स्वरूप का चिन्तवन एक क्षण मात्र भी नहीं करता। यह तो पर का कर्ता स्वयं बना बैठा है। ये पुद्गलादि द्रव्य हैं वे उपयोग रूप नहीं होती। उपयोग है वह तो उपयोग ही रहेगा। ये जो कर्म जनित पर्यायें हैं वे अवश्य विनाश होने वाली हैं। तथा पर्यायें स्वतः बदलती रहती हैं। रूप वर्णादिक है वे उपयोग नहीं, उपयोग है वे वर्णादिक रूप नहीं। उपयोग तो अपने आत्म स्वभाव में हैं सब से भिन्न है। रोग है वे भी वेदनीय कर्म का फल है वे भी शाश्वत ध्रुव रूप नहीं है।

आस्रव बंध के कारण अपने परिणाम ही हैं जैसे अपने परिणाम होंगे वैसे ही आस्रव और बंध होगा। जब शुभ भाव होंगे तब शुभ कर्मों का आस्रव होगा अशुभ भाव जब होंगे तब अशुभ कर्मों का आस्रव होगा। जब जीव के भाव हिंसादि रूप

संरम्भ, समारम्भ, आरम्भ इन तीनों की क्रियाओं को अपने मन, वचन काय व कृतकारित और अनुमोदना से करना। क्रोध मान, माया, लोभ इन चार कषाओं से सतत पापास्रव जीवों के होता है। तथा मन से संरम्भ करने के भाव हों तब अतिक्रम होता है जब समारम्भ करनें के भाव हों तब व्यक्तिक्रम होता है तथा व्रत संयम की मर्यादा भंग करने की ओर झुक जाना यह व्यतिक्रम है। तथा आरम्भ करने में लग जाना यह अतीचार है। जब कृतकारित अनुमोदना पूर्वक तथा क्रोधादि कषाय संयुक्त हों तब विषयों में जीव की आसक्ति हो उसको अनाचार कहते हैं इस प्रकार प्रत्येक के भंग करने पर १०८ भेद होते हैं तथा अनेक आस्रव के भेद हो जाते हैं। तथा मिथ्यात्व मन वचन काय ये तीन योगों के १५ पन्द्रह भेद का परस्पर गुणा करने पर आस्रव के अनेक भेद हो जाते हैं। जो आस्रव हुआ है उन जैसी जाति के पुद्गल स्कंध प्रति समय जीव के आते हैं वे कर्म रूप होकर चार प्रकार की अवस्थाओं को प्राप्त होते हैं प्रकृति बंध, स्थित बंध, अनुभव बंध, प्रदेश बंध इस प्रकार चार प्रकार का बंध हो जाता है। इनका बंध मिथ्यात्व कर्म के साथ में अधिक होता है।

हे भव्यात्मा! तू अपने आत्मा को अपने आत्मा में अपने आत्मा के द्वारा देख वह तेरा आत्मा सब लोक मे सबसे सुन्दर है और वह ही निश्चय से शुद्ध-बुद्ध ज्योति स्वरूप है वह ज्ञाता जानने वाला एक ही है। आचार्य कहते हैं कि जो तेरा आत्मा है वह इन इन्द्रियों द्वारा देखा नहीं जाता है शरीर में व्याप्त होने पर भी अदृश्य है तथा मन में भी जिसका संकल्प नहीं वचनों से जिसका स्वरूप कहा नहीं जाता तथा शरीर से पकड़ा भी नहीं जाता है वह परम ज्ञान ज्योति स्वरूप शुद्ध-बुद्ध आत्मा

अपना आत्मा है उसका अनुभव आप अपने द्वारा प्रयत्न पूर्वक कर जो तीनों लोकों में सबसे सुन्दर है उस सुख को प्राप्त करने का प्रयास कर। वही तेरा आत्मा है। जो इस शरीर में प्रकाशमान हो रहा है। जिस प्रकार व्यंतर देव राक्षसगण वाले को दिखाई देते है परन्तु देवगण वाले को वे दिखाई नहीं देते हैं। इसी प्रकार जब सब प्रकार के परिग्रह के राग से रहित होकर अनुभव करेगा तब वह सूर्य समान प्रकाश दिखाई देगा।

अभ्यन्तर तथा बाह्य योगों का त्याग कर (अभ्यन्तर) तथा संज्ञा और आहार तथा मन वचन, काय, की क्रियाओं को दूर करके आत्मा को अपने आत्मा में देख। जब तक योगों की प्रवृत्ति बाह्य वस्तुओं में रहती है तब तक बाह्य वस्तु में ही अनुभव गोचर होती हैं। जब बाह्य वस्तुओं से निवृति होती है तब आत्मा में रुचि होती है। क्योंकि जब तक इन्द्रियों के विषयों में आसक्ति है तब तक स्वात्मा की अनुभूति नहीं होती है जैसे-जैसे पंचेन्द्रियों के विषय रुचिकर नहीं होते तैसे-तैसे आत्म रुचि अधिक बढ़ती जाती है जैसी-जैसी आत्म रुचि की भावना बढ़ती जाती है तब बाह्ययोग तथा अहारादि पंचेन्द्रियों की विषयों से अरुचि होती जाती है। आत्म रस जिसको प्राप्त हो गया है वह क्या अभक्ष्य का भक्षण करेगा ? कदापि नहीं करेगा।

हेभव्यात्मन् ! तू जिन इन्द्रिय भोगों को भोग कर सुख की इच्छा कर रहा है वे इन्द्रिय जनित सुख नहीं हैं वे सुखाभास हैं तथा वे दुःख रूप ही हैं और तीव्र दुःखों के कारणभूत आस्रव व बंध होता है इसलिये इनका त्याग करके सम्यक्त्व, ज्ञान' तप और चारित्र में रत हो और सुख दुःख में समता भाव धारण कर वीतराग हो ये ही समाधि है। जब तक राग रहता

है तब तक यथार्थ सम्यक्त्व, ज्ञान, चारित्र, तप इनकी प्राप्ति नहीं होती है। जब राग रहित होकर सम्यक्त्व पूर्वक ज्ञान तप और चारित्र में लीन होता है तथा सुख दुःख में समता भाव होना यह ही साधु समाधि है।

आचार्य कहते हैं कि इस संसार में रहते हुए जीवों के दुःख का कारण एक संयोग ही है। जब संयोग हो जाता है तब प्रसन्न हो नाचता है किन्तु जब पुनः उनका वियोग हो जाता है तब वहुत दुःखी होता है। यह निश्चय जान कि परम्परा से दुःख इस संयोग और वियोग के साथ ही लगा हुआ चला आ रहा है। इसलिये अब इस दुःखदाई संयोग का त्याग कर। और अपने योगों की विशुद्धि करके पर का ममत्व त्याग कर जिसके होते ही तेरे को अविनाशी सुख की प्राप्ति हो सकेगी। इसके लिये उद्योग-शील हो।

हे भव्य तूने-! अनेक वार साम्राज्य वैभव को प्राप्त किया और सब राजाओं का अधिपति बना तु चक्रवर्ती भी हुआ तथा मनुष्यों का राजा हुआ नागेन्द्र पद को भी अनेक वार प्राप्त किया। अनेक वार कामदेव पद को भी पाया तथा योगेन्द्र पद भी अनेक वार पाया, अनेक वार माता हुआ और पिता भी अनेक वार हुआ, पुत्र भी अनेक वार हुआ। अनेक वार सेवक हुआ, अनेक वार स्वामी भी हुआ। अनेक वार भाई भी हुआ और अनेक वार मनुष्य हुआ, अनेक वार श्रावक पदों को प्राप्त किया परन्तु एक साधु समाधि की प्राप्ति नहीं हुई। इस जीव ने संसार में भ्रमण करते हुए अनेक पदों को प्राप्त अनेक वार किया परन्तु रत्नत्रय की प्राप्ति कभी भी नहीं हुई। तपस्या भी करी उपवास भी अनेक वार किये ये सब भव भव में प्राप्त हुए। ग्राम, घर, मकान जिनको अपना मानता था वे भी अनेक

वार प्राप्त हुए परन्तु साधु समाधि की प्राप्ति एक वार भी नहीं हुई।

मिथ्या दर्शन और मोह के उदय से यह जीव अनादि काल से पांच परावर्तन रूप संसार में भ्रमण करता चला आ रहा है। द्रव्य, क्षेत्रकाल, भव और भाव इस प्रकार पांच प्रकार का है। जिसमें निगोदिया जीव लब्ध पर्याप्तक एक स्वास्वोच्छ्वास में अठारह वार जन्म लेता है और मरण करता है तथा छुद्र भव का धारी लब्ध पर्याप्तक जीव एक अन्तर मुहूर्त में ६६३३६ जन्म तथा मरण कर दुखो का अनुभव करता है। एकेन्द्रिय लब्ध पर्याप्तक निगोदिया जीव ६६१३२ वार तथा दो इन्द्रिय जीव ८० वार, तीन इन्द्रिय जीव ६० वार तथा चार इदिन्य जीव ४० वार, पंचेन्द्रिय जीव २४ वार जन्म मरण करता है सबका जोड़ ६६३३६ वार होता है। ये छुद्र भव इस जीव ने अनन्त वार प्राप्य किये। दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय, पांच इन्द्रिय, असैनी व सैनी त्रियंचों के पर्याप्त निवृत्ति पर्याप्तक भेद हैं इन भेदों को भी इस जीव ने अनेक वार प्राप्त किया। तथा वध बंधन छेदन-भेदक गड़नादि भूख, प्यास, शीत, उष्ण व अधिक बोझ का लादना रूप दुःखों को अनन्त वार पाये। मनुष्य गति को प्राप्त कर अनेक वार दुःख पाये। देवगति को प्राप्त कर अनेक प्रकार के दुःख सहे। तथा नारक शरीर प्राप्त करके परस्पर दुःखों का वेदन किया। तथा ऐसी कोई योनि व योग स्थान व क्षेत्र काल भव बाकी नहीं रहा कि इस जीव ने प्राप्त न किया हो परन्तु समाधि मरण नहीं किया। इस प्रकार भव भाव रूप समुद्र में गोते खाये।

जो इस जीव का संयोग हुआ है। संयोग का अस्तित्व पता नहीं है वह तो अवश्य ही समय पाकर विनश जायगा।

शाश्वत् तो एक रत्नत्रय स्वरूप आत्मा ही है। तथा ज्ञान, दर्शन, वीर्य तथा सम्यक्त्व ये ही स्थिर और शाश्वत् हैं। इसलिये उस आत्मा के शाश्वत् अविनाशी के गुणों का प्रकाश करना ही श्रेयस्कर है। तथा उसके लिये सम्यक्त्व पूर्वक ज्ञान, ध्यान और संयम का दृढ़ता पूर्वक पालन करके तेरह प्रकार का चारित्र पालन करने से ही मोक्ष सुख की प्राप्ति होगी यही साधु समाधि है।

साधु समाधि की सामग्री का कथन किया गया है कि वाह्य संयोगों का त्याग कर संयम तप ध्यान करना चाहिये जिससे यथाख्यात चारित्र की प्राप्ति हो यथाख्यात की प्राप्ति होने पर ही सर्व कर्मों का समूल नाश किया जाता है और कर्मों का नाश होने पर अविनाशी मोक्ष सुख प्राप्त होगा यह साधु समाधि का संक्षेप से कथन किया है।

वैयावृत्ति करण

वैयावृत्ति के दस भेद हैं। वे दस कौन से हैं सो नाम गिनाये गये हैं। आचार्य, पाठक, साधु, ग्लान, शैक्ष्यसंघ, कुल. गण, मनोज्ञ और तपस्वी हैं इनको वैयावृत्ति मात्सर्य भाव व राग द्वेष को छोड़कर करनी चाहिये। जिस काल में मिले उस ही काल में करना। क्योंकि इनका मिलना बड़े पुण्य के योग से ही होता है। तथा मिल भी जावें तो भक्ति भावना का होना कठिन है जो शिष्यों को मोक्षदायनी दीक्षा शिक्षा व प्रायश्चित देते हैं तथा जो स्वयं पंचाचारों का पालन करते हैं वे आचार्य कहलाते हैं। जो एकादश अंग तथा चौदह पूर्वों को स्वयं पढ़ते हैं व दूसरे शिष्यों को पढ़ाते हैं वे उपाध्याय अथवा पाठक कहलाते हैं। साधु जो निशंक होकर एकान्त जंगल, गुहा अथवा मन्दिर आदि स्थानों में रहकर रत्नत्रय का निर्दोष पालन करते हैं वे साधु हैं जो बहुत काल के दीक्षित हैं उनको साधु कहते हैं। ग्लान—जो रोगी हैं जिनका शरोर रोग से जर-जर हो रहा है उनको ग्लान कहते हैं। जो साधु अध्ययन करने में लवलीन रहते हैं वे शैक्ष्य कहलाते हैं। आचार्यों के दीक्षित शिष्यों के समूह को कुल कहते हैं। मुनि, आर्यिका, श्रावक-श्राविका इनके समूह को संघ कहते हैं तथा आचार्य निर्यायक स्थविर और अनगार इनको संघ कहते हैं। जो साधु दिन, दो दिन, सप्ताह, पक्ष, मास व चार मास इत्यादि प्रकार से उपवास करते है वे मुनिराज तपस्वी कहलाते हैं। जिनकी प्रशंसा चारों ओर फैल रही है जो उपदेश देने में

कुशल हैं उन मुनिराजों को मनोज्ञ ऐसा नाम है। मुनिराजों के समूह को गण कहते हैं। इनकी सेवा चाकरी करना वैया-वृत्ति है।

यह शरीर रोगों का एक मात्र कोष है इस शरीर में असं-ख्यात रोग भरे हैं सबसे बड़ा रोग क्षुधा एवं प्यास है। जब गुणों के समुद्र ऐसे साधुओं के शरीर में रोग उत्पन्न हो गया हो जिससे उनकी काया अत्यन्त दुर्बल हो गई है तथा जिनको गलित रोग दाद, खाज, खिसरी, कुष्ट, अतीसार तथा मूल व्याधि या जलोदर का रोग शरीर में व्याप्त हो रहा है। ऐसे मुनिराजों को देख भव्य निर्वाण सुख चाहने वाला उनके गुणों में अनुराग करने वाला इस प्रकार प्रसन्न होता है जैसे सूर्य के उदय से कमल खिल जाता है। तथा तन, मन, धन को लगाकर उनकी दिन रात सेवा करता है वह भव्य है। वैयावृत्ति करके पुण्यानुबंधी पुण्य को उपार्जन करके कुछ ही काल में नियम से मोक्ष जाता है। इसमें असाधून् इसका अर्थ सम्यग्दृष्टि भाव सहित द्रव्यलिंगी ग्रहण किया है। यह विशेष है।

शुभ भावों से तथा अपनी भक्ति से जो कहे गये दस प्रकार के मुनिराज उनको औषध दान व आहार दान देकर संतुष्ट करना यह वैयावृत्ति है। तथा कोई विशेष विद्वान् को बुलाकर अध्ययन का प्रबन्ध कर देना। यदि किसी कारण से मन चंचल वृत्ति को प्राप्त हुआ है तो उनको विद्वान सम्बोधन करके स्थिर करना तथा रोग की बाधा या परिषह आ जाने के कारण जिनका तन क्षीण हो गया हो उन मुनियों की हाथ पैर शरीर की सेवा करना व पाटा, चटाई, शास्त्र इत्यादिकों को यथास्थान रखना एवं मुनिराजों को कर पकड़ कर उनको यथा स्थान पर बैठाना यह वैयावृत्ति है।

जो आचार्य वात्सल्य अंग के धारी होते हैं वे भव्य शिष्यों को शिक्षा दीक्षा देते हैं। तथा व्रनयम रूप तथा निमयरूप देते हैं। जो स्वयं दर्शनाचार, ज्ञानाचार, तपाचार, चारित्रचार, और वीर्याचार इन पंचाचार्यों का स्वयं पालन करते हैं तथा शिष्यों से पालन करवाते हैं तथा साधु के जो मूल गुण हैं उनका भी वे निर्दोष पालन करते हैं। जो सेवक मुनियों को सुपथ में लगाते हैं अथवा सुपथ में चलने की प्रेरणा या उपदेश देते हैं; वात्सल्य भाव से युक्त वे आचार्य संघ में प्रधान होते हैं और योगियों के मूलगुण व उत्तरगुणों में लगे हुए अतिचारों का निराकरण करने के लिये प्रायश्चित देते हैं तथा ऐसा उपदेश देते हैं कि भविष्य में ऐसा नहीं करूंगा इस प्रकार शिष्यों से प्रत्याख्यान भी करवाते हैं वे आचार्य परमेष्ठी कहलाते हैं। इन आचार्यों की सेवा करने वाले भव्य जीव ही निर्मल आचारण का पालन करते हैं। इसलिये उन आचार्यों की सेवा वैयावृत्ति करनी चाहिये।

दीक्षा आदि का छेद व परिहार करते हैं तथा वे उस शिष्य की शरीर गति व देश काल का विचार करते हैं। प्रति समय वे पांचों समितियों तथा तीन गुप्तियों का पालन करते हैं। यह प्रायश्चित या छेदोपस्थापना गुरू के वचनानुसार होता है वह पक्ष महीना छह महीना को शिष्य को संघ से निकालते हैं मर्यादा के वाद पुनः संघ में रखते हैं। जो घोर तपस्या करते हैं तथा मासोपवास, पक्षोपवास आदि अनेक प्रकार के व्रतों को करते हैं वे महान आत्मा जगत में प्रसिद्ध हैं। एक दिन और रात्रि में लगे हुए दोषों को प्रतिक्रमण और कायोत्सर्ग के द्वारा दूर करते हैं उनको तपस्वी कहते हैं।

जो अंग वाह्य और अंग प्रविष्ट आगम को स्वयं पढ़ते हैं

तथा अपने शिष्य वर्ग को पढ़ाते हैं। साधु के मूल गुण व उत्तर गुणों में लीन रहते हैं। वे भक्ति से, विनय से आगम का अभ्यास स्वयं करते हैं। वे स्व पर के हित का हमेशा ही साधन करने में दत्त-चित्त रहते हैं उनको उपाध्याय कहते हैं। वे उपाध्याय परमेष्ठी हैं इनकी वैयावृत्ति करना तथा गुणों में अनुराग करना भक्ति करने से कर्मों का संवर होता है तथा कर्मों की निर्जरा होती है।

वे पाठक साधुओं के मूलगुण तथा उत्तरगुणों का पालन करते हैं। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र में लवलीन रहते हैं तथा अंतरंग परिग्रह और बाह्य परिग्रह से रहित होते हैं। वे भव्य जीवों में गुण प्रधान कहे गये हैं इस प्रकार उपाध्याय हैं उनकी सेवा वैयावृत्ति करना चाहिये।

जो मुनिराज भयंकर से भयंकर उपसर्ग या परीषह आ जाने पर भी अपने तप से चलायमान नहीं होते हैं। वे उपसर्ग विजयी पक्षोपवास, मासोपवास, चतुर्मासोपवास, छह महीनोपवास करते हैं। तथा आतापन योग वर्षा योग धारण कर कर्मों का भेदन करने वाले होते हैं। वे मुनिराज तपस्वी कहलाते हैं। ऐसे मुनिराजों की वैयावृत्ति, दान, मान, सम्मान भक्ति पूर्वक जो करते हैं वे तुच्छ काल में ही मोक्ष सुख प्राप्त करते हैं।

जो गुरु के पास में अंग प्रविष्ट और अंग बाह्य का पाठ करते हैं तथा जिन्होंने शास्त्र के रहस्य को जानने की इच्छा की है वे मुनिराज शैक्ष्य कहलाते हैं। जिनका शरीर अनेक रोगों के कारण वेदना युक्त हो रहा है फिर भी वे अपने मूलगुणों एवं उत्तरगुणों का यथाकाल पालन करते हैं तथा अपनी छह आवश्यक क्रियाओं का निरन्तर निर्दोष पालन करते हैं उन मुनिराजों को ग्लान कहते हैं। ऐसे मुनिराजों की व चार प्रकार के संघ की

वैयावृत्ति करना, यह वहु गुणों को भव्य जीवों को देने वाली है।

यति मुनिराज तथा अनागार स्थविर निर्यापक शांत इनके समूह को संघ कहते हैं तथा श्रावक-श्राविका मुनि, आर्यिका इनके समूह को चतुर्विध संघ कहते हैं इनकी सेवा शुश्रषा करना वैयावृत्ति करने वाले भव्य स्वर्गों के सुखों को भोगकर क्रम से मोक्ष को प्राप्त होते हैं। ऐसा आगम में कहा है।

जिन मुनिराजों की कीर्ति दूर-दूर तक फैल रही है तथा जिनकी आज्ञा को मानने वाले राजा सेठ साहूकार हैं तथा जो ज्ञानोपयोग में रत रहते हैं जो रत्नत्रय पालन करने में कुशल हैं। पर स्व का गोपन करने में समर्थ हैं उन मुनिराजों की वैयावृत्ति करना, भक्ति करना यह भव्य जीवों को अलभ्य सुख सम्पत्ति देने वाली है जिनकी वैयावृत्ति करने से जो प्राप्य नहीं वह भव्य जीव को मिल जाता है।

दस प्रकार के मुनियों की भक्ति व श्रद्धान से दान पूजा करना तथा उपकरण देना, वस्तिका, फलक, चटाई, घास इत्यादि की व्यवस्था करना व शास्त्राभ्यास कराने के लिये विद्वान् की व्यवस्था करना। यदि रोगी हों तो वैद्य को दिखाकर औषधि आदि की व्यवस्था करना तथा शरीर का मर्दन करना, हाथ पैर दवाना इत्यादि अनेक प्रकार से वैयावृत्ति करना चाहिये।

जिन्होंने जिन आचार्यों से दीक्षा-शिक्षा प्राप्त की है। ऐसे शिष्य समूह को कुल कहते हैं। तथा आचार्य के दीक्षित मुनि आर्यिका, श्रावक-श्राविकाओं के समूह को संघ कहते हैं इस संघ की सेवा, चाकरी ठीक वैसी ही करनी चाहिए जैसी माता अपने गर्भ से उत्पन्न पुत्र की रक्षा प्रमाद छोड़कर करती है। उसी प्रकार भव्य सम्यग्दृष्टि जीव कुल की पुनीत सेवा शुश्रषा करते हैं, वही बड़भागी है, वही श्रावक धन्य हैं।

अर्हद् भक्ति

इस संसार में जीव का महा बैरी दुःख देने वाला तो मोह है जिसके आधीन ब्रह्मा, विष्णु, महादेव तथा देव मनुष्य सब ही हो रहे हैं। उस मोह रूपी महा बैरी को आपने क्षय कर दिया है। तथा रजकहिये ज्ञानावरण, दर्शनावरण तथा रहस कहिये अंतराय कर्म इन चारों का नाश आपने लीला मात्र में ही कर दिया है तथा घातिया कर्मों के नाश होते ही क्षायक सम्यक्त्व, अनंतज्ञान अनंतदर्शन, अक्षय सुख तथा अनंतदान, लाभ, भोग, उपभोग तथा अनंत वीर्य रूप अंतरंग लक्ष्मी को प्राप्त किया है। जिस प्रकार मेघों के द्वारा अच्छादित सूर्य का प्रकाश और प्रताप एक साथ ही प्रकट होता है। उसी प्रकार भगवान के दर्शन और ज्ञान एक साथ ही उत्पन्न होते हैं। जो कर्म अनादिकाल से मेरे द्वारा ही किये गये हैं वे कर्म उदय में आकर दुःख ही दुःख देते आ रहे हैं तथा वे कर्म मेरे आत्मा में एक रूप हो रहे हैं। जो दुर्निवार है जिनका हम नाश करने में असमर्थ हैं। मैं अभिमान में आकर यह विचार करता था कि मैं ही कर्मों का भली प्रकार करने वाला हूँ। जब वे फल देकर खिरते हैं दुःख ही देते हैं। जन्म मृत्यु का दुःख तथा बुढ़ापा रूपी दुःख कभी इष्ट वियोग कभी अनिष्टसंयोग रूप दुःख हमेशा ही होता है। एक क्षण मात्र भी सुख की प्राप्ति नहीं। हे भगवान वे दुःख आपके दर्शन मात्र से ही नष्ट हो जाते हैं। हे भगवान आपने तो सर्व कर्मों का

नाश कर दिया है इसलिए आप वीतराग हैं जो गणधरादि गुणों के भण्डार हैं तथा इन्द्र चक्रवर्ती देवों के गुरु वृहस्पति आदि महा-पुरुष भी आपकी भक्ति करके सुखों को प्राप्त हुए तथा उसी प्रकार मैं भी अपने कर्मों की श्रृंखला के नाश करने को आपकी भक्ति करता हूँ तथा नमस्कार करता हूँ।

जिन आदिनाथ भगवान की स्तुति सौ इन्द्रों के द्वारा की गई थी तथा गणधरों ने जिनके गुणों का अनुवाद अनेक प्रकार से किया। परन्तु वे गणधरादि सब ही गुणों के अनुवाद करने में असमर्थ रहे। तथा आपके दोनों चरणों की बार-बार स्तुति व वन्दना की। आपके गुणों का कीर्तन किया परन्तु वे सम्पूर्ण गुणों का गान करने में असमर्थ ही रहे क्योंकि गुण तो अनंत हैं।

वचन वर्गणायें असंख्यात लोक प्रमाण ही है इसलिए वे सब गुण वाणीगोचर नहीं कहे जा सकते क्योंकि गुण तो अनंत हैं। जिस प्रकार समुद्र से आये हुए हंस से मेढ़क पूछता है तुम कहां से आये हो? तब हंस बोला कि समुद्र से आया हूं। मेढक ने पूछा तुम्हारा समुद्र मेरे कुए से भी बड़ा है क्या? तब हंस बोला भाई समुद्र बहुत बड़ा है वह वचनगोचर नहीं जो कहा जावे, यह सुन मेढक आश्चर्य चकित हुआ। जिसने कभी समुद्र का नाम भी न सुना हो वह क्या उसके गुणों का कीर्तन करने में समर्थ हो सकता है? हम भी निर्बुद्धि होकर स्तुति करने को सम्मुख हुए हैं क्योंकि आपके गुण अनंत हैं जहां पर गणधर भी समर्थ नहीं हुए तो हमारी क्या क्षमता।

हे भगवान् आपके दोनों चरणों की सेवा करते हुए जब आपके विमल गुणों को जिनकी बुद्धि महाविशाल थी वे मुनि-राज व चक्रवर्ती गणधर धर्म के धारण करने वाले बुद्धिमान जब आपके गुणों को मन में धारण कर दुःखों का नाश करने में

समर्थ हो जाते हैं आपके विमल गुण तथा उपमा से रहित हैं तो वक आप ही की वाणी है क्योंकि देव तो ब्रह्मा, विष्णु, महादेव इत्यादि हैं वे क्या आपके गुणों को प्राप्त कर सकते हैं? जिस प्रकार एक महारत्न की कान्ति कहां कांच की बनी हुई आरसी शोभा पा सकती है क्या ?

भगवान के गुण तो अनंत हैं और उपमा से रहित हैं तथा मलों से रहित हैं और कर्म मल कलंक से रहित हैं क्योंकि भगवान के घातिया, अघातिया दोनों प्रकार के कर्मों का नाश हो चुका है इसलिए विमल हैं। आपकी वाणी दो विभागों से वटी हुई है अंग प्रविष्ट और अंग बाह्य रूप वाणी विमल है मल रहित है जिसको चक्रवर्ती तथा मुनिराज, गणधर, देव. इन्द्र आदि अपने हृदय में बड़े हर्ष से धारण करते हैं तथा आपकी वाणी को सुनने में मग्न रहते हैं तथा उस वाणी के धारण करने से वे बुद्धिमान कहे जाते हैं क्योंकि आपकी वाणी निर्मल कहने से राग-द्वेष से रहित है क्योंकि आप वीतराग हैं। परन्तु हरि विष्णु, महादेव, ब्रह्मादि भी उपदेश देते हैं उनका उपदेश मल युक्त ही होता है क्योंकि उनका मन राग-द्वेष मलों से दूषित है इसलिए जहां महारत्न की कांति शोभती है वहां कांच की आरसी शोभा को प्राप्त होगी क्या? कदापि नहीं होगी। आपकी वाणी आगम प्रमाण अनुमान से भी विरुद्ध नहीं अनेक मतानुयायियों के द्वारा भी खण्डन नहीं की जा सकती। यही इसमें विशेषता है।

हे भगवन्! जब आपका जन्म हुआ तब इन्द्राणी आपको प्रसूति ग्रह में से लेकर आती है और इन्द्र गोद में लेकर आपके स्वरूप को दो नेत्रों से देखकर तृप्त नहीं होता, तब एक हजार नेत्रों से आपके रूप का निरीक्षण करता है। यह बड़ा आश्चर्य

है। आपके नाम को श्रवण करता हुआ बैल मरण को प्राप्त हुआ और क्षण मात्र में ही ऋद्धिधारक देव हुआ। आपकी भक्ति तथा आपके नाम को जो ध्याता है वह अक्षय सुखों को प्राप्त करता है। जो आपके गुणों का चिन्तवन करता है वह सब दुःखों से निवृत्त हो जाता है।

संसारी जीवों को संसार में रहते हुए हमेशा दुःख ही दुःख है। हे भगवान ! आपके बताये हुए मार्ग के अवलम्बन का त्याग कर आर्तरौद्र ध्यान का कारण मिथ्यात्व का अवलम्बन लेकर दुष्कर्म करने में तत्पर होकर (पाप कार्य करके नरक गति में जाकर निरंतर दुःखों को भोगता है तथा वहां से निकल कर तिर्यंच गति के दुःखों को भोगता है तथा देव, दुर्गति, व मनुष्य गति के दुःखों का निरन्तर अनुभव करता है। परन्तु हे जिनेन्द्र ! आपके द्वारा बताये हुए धर्म पर उनकी रुचि नहीं होती। जैसे सुयोग्य वैद्य के द्वारा बताया हुआ मीठा दूध पित्त ज्वर वाले को कडुआ लगाता है और उस मीठे दूध को कडुआ कहकर उगल देता है। उसी प्रकार सच्चे देव और उनके द्वारा कहा हुआ सच्चा धर्म और उस धर्म के अनुसार चलने वाले आचार्य उपाध्याय व सर्व साधुओं में मिथ्यात्व कर्म के उदय होने से रुचि नहीं होती।

हे देवाधिदेव ! आपने प्रथम ही घातिया कर्मों का नाश-कर दिया तब आपके अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, सुख वीर्य की प्राप्ति हुई इसलिये आप ही मोक्ष मार्ग के नेता हैं। आपके ज्ञान में द्रव्य और गुण तथा गुणों की होने वाली अनन्तानन्त पर्यायों सहित आपने लोक और अलोक सबको ज्ञेय बनाया और आप ज्ञायक बने तथा आप सर्वज्ञ हैं। आपके गुण उपमा से परे हैं। उपमा दी जाय तो उपमा के योग्य कोई वस्तु नहीं है। इसलिये

आप अनुपम गुण के धारी हैं। आपके राग का अभाव होने के कारण ही आप सच्चे उपदेशक हैं तथा आप वीतराग हैं। भक्त जन मन में अत्यन्त सुख का अनुभव करते हुए आपकी स्तुति के द्वारा आपको अपना ध्येय बना लेते हैं। अथवा भक्तजन मन में अल्हादित होकर स्तोत्रों के द्वारा आपको अपना ध्येय बना लेते हैं।

भो देव। हे गुरु दीनबन्धु! तीनों लोकों में जीव का कोई भी शरणागत नहीं है आप ही मुझ दीन की रक्षा करने वाले हैं। आप मेरी रक्षा करो। इस संसार में भ्रमण करते हुए भव भव में जो दु:ख सहे तथा भोगे हैं उन दु:खों की संख्या नहीं। मैंने सन्मार्ग से भ्रष्ट होकर कुदेव, कुधर्म, कुगुरुओं की अबुद्धि से पूजा की तथा दान दिया और कुधर्म का पालन करके पापोपार्जन अनेक प्रकार से किये। जब वे कर्म उदयावली में आये दुर्गतियों में जन्म लेकर दु:ख भोगे इसलिये अब मैं दु:खों से घबराकर आपकी शरण में आया हूँ। आपके बिना अन्य कोई भी तीनों लोकों में शरण नहीं। हे देव आप रक्षा करो।

भो देव! अन्य जितने देव हैं तथा ब्रह्मा, विष्णु, महादेव कार्तिकेय इत्यादि हैं वे सब व्यसन से युक्त हैं तथा भयभीत हैं। विष्णु तो शत्रु के भय से चक्र को धारण किये हुए हैं। तथा ब्रह्मा चर्मसूत्री नामक हथियार को धारण किये हुए हैं। महादेव त्रिशूल को कन्धे पर रखे हुए हैं। परशुराम हैं वे फर्सा को लिये हुए हैं। और कृष्ण तो गोपियों के साथ रमण करते हैं तथा महादेवजी ने तो पार्वती को ही अपना आधा अंग बना लिया है वे सतत प्यारी-प्यारी ऐसा ध्यान स्त्री का ही करते रहते हैं। ब्रह्मा उर्वशी पर आसक्त हैं इस प्रकार सब देवों को अपनी-अपनी स्त्रियां प्यारी हैं। वे देव हिंसा और आरम्भ में धर्म

कहते हैं तथा आरम्भ हिंसा करने से ही मोक्ष होता है। जिससे मोक्ष सुख हो वही धर्म है। वे देव हिंसा और आरम्भ में रत रहते हुए पंचेन्द्रिय के विषय रूपी विष का सदा पान करते हैं। और परिग्रह में रत हैं। वे सन्मार्ग का उपदेश कैसे दे सकते हैं। क्योंकि वे रागी हैं। इसलिये हे जिन देव! यथार्थ में आपकी धर्म की सत्ता ही सत्य है अन्य में न देवपना है न धर्म ही है। एक सत्यार्थ मार्ग है तो आपका ही है।

हे भगवन्! आपके पीछे जो भामण्डल लगा हुआ है उसकी प्रभा से करोड़ों सूर्यों का प्रकाश लज्जित हो जाता है। तथा जिस प्रकार सूर्य के प्रकाश होते ही अंधकार का नाश हो जाता है वैसा ही यह आपका ज्ञान है वह सम्पूर्ण जीवों के अज्ञान के विनाश का कारण है। आपका ज्ञान सब पदार्थों को जानता हुआ लोक अलोक में व्याप्त है। जिस प्रकार महानील मणि दुग्ध में डाल देने पर दूध को नीला बना लेती है। यह उस नीलमणि की प्रभा का माहात्म्य है। वह दूध रूप नहीं; दूध नीलमणि रूप नहीं, उसी प्रकार ज्ञान सबको प्रभावित करता है परन्तु तदनुरूप होता नहीं यहआपके ज्ञान की ही महिमा है।

हे जिनेन्द्र! आपके पुण्य की वह महिमा है। अथवा आपका पुण्य परमाणु अलौकिक है जिनके प्रभाव से देव स्वर्ग से आकर आपके चरणों की सेवा करते हैं तथा पवन कुमार देव आकर समवशरण के विहार के पहले ही मार्ग को कंटक रहित स्वच्छ कर देते हैं। आपके पैरों के नीचे सुवर्णमयी कमलों की रचना देव करते हैं, जो अशोक वृक्ष हैं वह तो आपके गुणों का कीर्तन, गान ही करते हों ऐसा प्रतीत होता है। आपके पुण्य के प्रभाव से आपके गुण ही अशोक वृक्ष बन गये हैं।

हे जिनेन्द्र देव! आपके शासन में ही स्याद्वाद है जहां पर

अनेकान्तात्मक पदार्थों का स्वरूप कहा जाता है। यथा घट अस्ति, घट नास्ति, घट अस्तिनास्ति, घट अवक्तव्य स्यात् अस्ति, घट अवक्तव्य स्यात् नास्ति, घट अवक्तव्य स्यात्, घट आस्ति नास्ति अवक्तव्य इस प्रकार आपको वाणी स्याद्वाद रूप की सिद्धि हैं। वह नयों की अपेक्षा से पदार्थों की सिद्धि करती है। कषाय तथा राग से रहित है। और निर्मल होने से शुद्ध है। शुद्ध कहने का तात्पर्य यह है कि वादी प्रतिवादो, प्रमाण, नय निक्षेप और अनुमान से दोष उत्पन्न नहीं कर सकते है। आपकी जो सर्वांग से दिव्य ध्वनि खिरती है वह भी विना किसी निमित्त के स्वयं ही खिरती है और वह स्याद्वाद मय है। वह एक पक्ष का निशरन करती है। अन्य जितने ब्रह्मा, विष्णु, महादेव इत्यादि हैं वे प्रथम तो राग द्वेष मयी हैं दूसरे वे स्याद्वाद के विषय से शून्य हैं वे एकान्तवादी हैं और भी यह बात है कि आपके तो अठारह दोष जो जन्म मरणादि थे वे नष्ट हो गये परन्तु यह बात उन हरिहरादिकों के नहीं है व उन अठारह दोषों से युक्त होने के कारण ही स्याद्वाद सप्त भंग रूप वाणी से रहित है। उनका ज्ञान भी अल्प है वे प्रथम में कुछ पीछे कुछ कहते हैं इस प्रकार परस्पर उनके ही वचनों में विरोध देखा जाता है।

हे भगवन्! ज्ञानावरणादि घातिया और अघातिया तथा औदारिकादि सब शरीरों का द्रव्य कर्म, भाव कर्म व नौ कर्म का अभावहोने से जो आपका ज्ञान है वहती नों लोकों के सम्पूर्ण पदार्थों को आरसी के समान जानता है। जिस प्रकार निर्मल आरसी के सामने जितने प्रकार के पात्र होंगे उतने प्रकार का विंव उसमें झलकते है। इसलिए आप सर्वज्ञ हैं। यह महिमा छद्मस्थ ज्ञान के धारियों में कैसे हो सकती है जिस प्रकार आरसी के ऊपर पड़ी हुई कर्दम जव तक है तव तक वह अन्य

पदार्थों को देखने में समर्थ नहीं होती। उसी प्रकार जीवों के केवल-ज्ञान के अभाव रूप होने से वे सत्र द्रव्य और उनमें होने वाली पर्यायों को नहीं जान सकते है । केवल कुछ ही पर्यायों को जानले यह भी शक्य नही क्योंकि मिथ्यात्व की संगत होने से ज्ञान भी मिथ्याज्ञान कहा जाता है इस ज्ञान में यथार्थता नहीं । हे देव ! यह तो निश्चय है जो कान्ति हीरे में होती है वह कांच के टुकड़ों में नहीं हो सकती। इसलिये जो आपका ज्ञान है वही ज्ञान श्रेयस्कर हैं।

हे मागधीशा: ! भव्य जीव आपकी वाणीको श्रवण करके अपने मन में अत्यन्त आनन्द को प्राप्त होते हैं तथा वे भव्य ही आपके चरणों की शरण को प्राप्त कर वोधि को भी प्राप्त होते हैं। आपके वैभव को देखकर इन्द्र, इन्द्राणी एक दम तांडव नृत्य करने लग जाते हैं तथा आपकी भक्ति में निमग्न हो जाते हैं और हाहा हूहू नाम के गंधर्व देव मन में मोद को प्राप्त होते हुए नाना प्रकार के स्वर ध्वनि के साथ आपके गुणों का गान करते नहीं थकते । चकार ककार रूप मकरान्त से गाते थे यह आपकी अंतरंग लक्ष्मी की शोभा थी। जिस प्रकार सूर्य के उदय होते ही कमल कमलिनी एकदम खिल जाते हैं उसी प्रकार आपके अंतरंग वहिरंग लक्ष्मी के उदय को देख भव्य जीव संसार के दु:खों से मुक्त हो जाते हैं।

हे स्वामिन् आपके शरीर में जन्म से ही १००८ शुभ लक्षण उत्पन्न हुए थे वे पैर से लेकर चोटी तक सर्वाङ्ग में विराजमान थे । आप हिरण्य जन्म के धारक थे । आप तो महाभट थे जिन्होंने सव संसार के जीवों को अपने कारावाश के अन्दर रोक रक्खा है उस मोह और कामदेव को आपने कुतूहल मात्र में ही पराजित कर दिया । जिससे वे भाग गये आपकी तरफ

फिरकर देख न सके। यद्यपि आप योगी हैं आपने इन्द्रिय जनित भोगों को नाश कर दिया है। तथा इन्द्रिय भोगों को विष पकवान के समान जानकर त्याग कर दिया है इसलिये आप योगी हैं। परन्तु आप अपने में अपने अनन्त भोग और उप-भोग को न भोगने में सतत लवलीन हैं (मग्न हैं) तथा अनन्त दर्शन व अनन्त ज्ञान सुख और वीर्य के आप भोक्ता हैं इसलिए आप महायोगी हैं। आप जिन कहिये चौथे गुणस्थानवर्ती सम्य-ग्दृष्टि से लेकर तेहरवें गुणस्थानवर्ती जीव हैं वे सब जिन कहलाते हैं। उनमें भी श्रेष्ठ होने से आप जिनवर कहलाते हैं। जो संसार में अजय सुभट रतिपति था उसको आपने बाल्यावस्था में ही जीत लिया था इसलिए महावीर हैं। आपका कोई शत्रु संसार में नहीं रहा आपने सब शत्रुओं को जीत लिया आप जय कहे जाते हैं। जो सबसे बड़े गुरु कर्म थे उन कर्मों को आपने कहने मात्र में ही क्षय कर दिया तथा आपने प्रथम घातिया कर्मों का नाश किये पीछे शेष अघातिया कर्मों की ८५ प्रकृतियों को समय मात्र में नाशकर अविनाशी सिद्ध पद को प्राप्त किया।

हे जिनेन्द्र देव ! आपके शरीर की मात्र सुन्दरता नहीं थी जो शरीर की सुन्दरता थी वह तो कहने मात्र ही थी। परन्तु सुन्दरता वह थी कि आपके पास क्रोधादिक पाप मल नहीं थे। आपने उनको पहले ही छोड़ दिया था। आपके पास तो उत्तम क्षमादि गुणों का भण्डार था जिससे सूर्य के प्रभाव को भी आपने जीत लिया था। आपकी प्रभा को देखकर सूर्य भी लज्जित हो जाता है। जो अविद्यादि दोष हैं वे भी आपके पास नहीं आ सकते हैं। तथा जहां पुण्य और पाप मलों को नाश कर दिया है इसलिये जहां पुण्य और पापों के कारण मोह रागद्वेष थे

उनका तो नाश ही कर दिया तव पुण्य पाप रूप मल भी नहीं रह जाते हैं। जिस प्रकार सूर्य का उदय होते ही अन्धकार नष्ट हो जाता है। तब पृथ्वी पर अंधकार कहां ठहर सकता है। उसी प्रकार आपके गुणों का प्रकाश होने के कारण अज्ञानादि रूप मलों का नाश हो जाता है। हे जिनदेव ! जिनके हृदय में आपकी भक्ति श्रद्धान नहीं वह स्वर्ग में रहो या कहीं अन्यत्र चले जाओ परन्तु सुख की प्राप्ति नहीं। तथा उसके मन की व्याकुलता कभी भी नष्ट नहीं हो सकती।

जब आपका ज्ञानावरण पूर्ण रूप से नष्ट हो गया था तव आपके ज्ञान क प्रकाश, लोक अलोकादि कोई क्षेत्र शेष नहीं रहा जहाँ कि आपका प्रकाश नहीं हुआ हो। यद्यपि सूर्य का प्रकाश लोक में प्रसिद्ध है परन्तु वह सूर्य भी जब मेघों के द्वारा आवर्णित हो जाता है तव उसका प्रकाश और प्रताप दिखाई नहीं देता है। आपके ज्ञान में लोक तथा अलोक में स्थित जितने द्रव्य हैं वे सब ही प्रकट रूप विविक्त होते हैं। यह बात ब्रह्मा विष्णु इत्यादि देव जो हैं उनके ज्ञान में नहीं पाई जाती। इसका मूल कारण मिथ्या मोह अज्ञान है। यह आपके ज्ञान की विशेष महिमा है कि युगपत् सब पदार्थों को जानते हैं तथा देखते हैं।

हे जिनेन्द्र ! आपने साम्राज्य और हाथी, घोड़े, रथ, पालकी रत्न तथा हजारों सुन्दर कामिनियों के विलास तथा शरीर के अंलकारों को, वस्त्राभूषण इत्र फुलेल आदि तथा चक्र दण्ड, खडग, तोमर इत्यादि आयुधों को पुराने तिनके के समान छोड़ा तथा सम्पूर्ण प्रकार की सम्पत्ति पुत्र, पत्नि, मित्र, पुरोहित सेनापति इत्यादि का त्याग किया। दीक्षा लेकर वनवास स्वीकार किया। ध्यान रूपी अग्नि के द्वारा मोह रूपी महा बैरी को नष्ट किया था। जिस प्रकार अग्नि का एक तिलंगा भी

हजारों मन लकड़ी के ढेर को नष्ट कर देता है उसी प्रकार आपने किया। भगवान कहते हैं कि इस मोह ने ही मुझे समिति गुप्ति रूपी माता के पास नहीं जाने दिया। इसलिये मैंने अपनीमाता के पास पहुंचने के लिये परिग्रह का त्याग किया। जब समितियों से युक्त गुप्तियों के कोट की सहायता से मोह रूपी वैरी को ध्यान रूपी अग्नि से नष्ट कर दिया इसका क्या कारण ?

इस संसार में तथा चारों गतियों में जन्म मरण तथा संयोग वियोग रूप दु:ख ही दु:ख हैं, जिन्हे यह मोह वैरी देता था। कभी स्त्री के वियोग रूप दु:ख कभी व्यभिचारिणी स्त्री हो जाने से संयोग रूप दु:ख देता था। पुत्र के न होने रूप दु:ख, कभी पुत्र के मरने रूप वियोग का दु:ख कभी लक्ष्मी के प्राप्त करने रूप दु:ख, कभी लक्ष्मी के विनाश रूप दु:ख, कभी इष्ट वस्तु के न मिलने रूप दु:ख, कभी अनिष्ट मिलने रूप दु:ख। कभी दूसरों के द्वारा शरीर के छेदन-भेदन पेरने, चीरने, टुकड़े करने व लोहादि धातुओं से संतप्त करके पिलाने व चिटकावने रूप दु:ख कभी भूख प्यास का दु:ख। कभी वैतरणी में कूदने व भाड़ में भूंजने रूप दु:ख। पानी के न मिलने से दु:ख, कभी भूख प्यास का ऐसा लगना कि तीन लोक का धान्य व पानी खा-पी जाऊँ फिर भी वह क्षुधा शान्त नहीं होती परन्तु ऐसी अवस्था में भी एक बून्द पानी एक कण अन्न नहीं मिला। इस प्रकार संसार में तथा चारों गतियों में भ्रमाकर इस मोह रूपी राग ने दु:ख दिया तथा प्रथम माता के गर्भ में दु:ख, दूसरे शरीर के सिकुड़ने का दु:ख, तीसरे माता के खाने से कभी अधिक गर्म कभी अधिक शीतल, चरपरा खाने से गर्भ में दु:ख सहा। गर्भ से निकलते समय जो दु:ख मैंने सहे व मेरी माता ने सहे उनकी सीमा ही नहीं रह जाती। बालपने के दु:ख, यौवन में रोग हो जाने के कारण

दुःख और सबसे अधिक दुःख तो वृद्धावस्था का है जहां इन्द्रियाँ अपने-अपने कार्य का त्याग कर शिथिल हो जाती हैं तथा इच्छायें बढ़ती जाती हैं वहां महा दुःख है। इच्छायें ही दुःख का मूल कारण हैं।

तिर्यंचगति यह पराधीन है, जब दो इन्द्रिय व तीन इन्द्रिय चार इन्द्रिय में उत्पन्न हुआ तो पक्षियों ने ज्यों ही देखा, त्यों ही अपनी वज्र के समान तीक्ष्ण चोंच से शरीर को भेदन कर खा लिया इसका दुःख, तथा पैरों के नीचे रौंद दिया जिसका दुःख। जब पंचेन्द्रियों में उत्पन्न हुआ तब प्रथम तो मन के बिना दुःखी तत्पश्चात् बांधने, अधिक बोझा लादने व हल जोतने से दुःखी हुआ तथा शीत व उष्णता के कारण भूख प्यास लगने पर चारा पानी नहीं मिलने रूप दुःख। देवों के वैभव को देखने व दूसरों की आज्ञा में चलने रूप व छह महिना पहले माला के मुरझाने रूप दुःख संसार में सहे। ये सब अब मेरे ध्यान में आ गये इसलिये मैंने सब घर बार जो मोह व राग द्वेष के बढ़ाने वाले हैं तथा आर्तध्यान, रौद्रध्यान के कारण जानकर छोड़ दिये। क्या ये दुःख तुम्हारे अनुभव में नहीं आये?

हे भगवान जिनेन्द्र! आपका कहा हुआ धर्म जिसमें श्रेय तो दया है तथा श्रद्धान ही कल्याणकारी है परन्तु श्रद्धान और ज्ञान चारित्र तप ये चारों ही दया रूप धर्म हैं। जहाँ पर धर्म निवास करता है वहाँ अन्य देव गुरुओं के कहे हुए अदया तथा कुज्ञान, मिथ्या तप और चारित्र कैसे रह सकते हैं। जिस देश में सूर्य का प्रकाश हो रहा हो वहां अंधकार बना रहे यह कदापि नहीं हो सकता है क्योंकि प्रकाश या अंधकार दोनों में से एक ही रहेगा।

अनादिकाल से यह जीव आर्तध्यान तथा रौद्र ध्यान इन

ध्यानों में ही लीन रहा। उन आर्तध्यान तथा रौद्रध्यानों को छोड़ने को सम्मुख नहीं होता है। कृष्ण नील और कापोत लेश्याओं का उदय रहता है उनमें भी आहार, भय, मैथुन और परिग्रह रूपी चार संज्ञाओं में रत है। उनको ही मोही अपनी सुखदायनी मानता है तथा उनका ही बार-बार चितवन करता है पुनः पुनः दुःखों को भोगता है तो भी उनको नहीं छोड़ता है। (जब पर दृष्टि छूटे) जब तक जीवों की पर में दृष्टि है तब तक ही बंध कहा गया है। जब आपके द्वारा कहा हुआ यथातथ्य मोक्षमार्ग है उसमें जीवों की रुचि नहीं होती इसका मूल कारण मोह की विशेषता है।

विशेष– अनादिकाल से जीवों का ऐसा एक समय नहीं आया कि जिसमें धर्म-ध्यान व शुक्ल ध्यान पाया हो। परन्तु जो दुर्ध्यान आर्त रूप, रौद्र रूप, चार संज्ञा और कृष्णादि तीन लेश्याओं का उदय (रहता) चला आ रहा है उस उदय के अनुसार ही जीव की परिणति बन रही है। इसमें मुख्य दर्शन-मोह व चारित्रमोह की ही महिमा है।

हे जिनेन्द्र देव ! यदि भव्य पुरुष आपकी वीतराग मुद्रा को देखकर स्वयं भी वीतराग भाव को प्राप्त हो जाता है। जो भक्त भक्ति से पूजा करता है वह भक्त मोक्ष का अधिपति बन जाता है इसमें कोई संदेह की बात नहीं। जब एक मेढ़क एक कमल की पांखुड़ी मुख में दबाकर भगवान की पूजा करने के भाव से बावड़ी में से निकलकर जाता है और हाथी के पैर के नीचे आकर मरण को प्राप्त हो जाता है और क्षण मात्र में देव बन जाता है। क्या साक्षात आपके दर्शन पूजा भक्ति भाव से करने से मोक्ष नहीं मिलेगा ? अतः अवश्य ही मिलेगा। जिनेन्द्र भग-वान तो किसी को कुछ भी देते नहीं न किसी से कुछ अपने लिए

चाहते ही हैं। फिर भी भक्तजन भावना के अनुरूप ही बोधि व मुक्ति प्राप्त कर लेते हैं इसमें कोई संशय नहीं है।

इस संसार में जीवों के लिए मंगल रूप हैं, तो आप ही हैं आप अरहंत भी हैं, सिद्ध भी हैं साधु भी हैं, आपका कहा हुआ धर्म है वही मंगल है तथा आप ही संसार में सबसे उत्तम हैं और आप ही तीनों लोकों के प्राणियों को शरण प्रदान करने वाले हैं। जो आपकी शरण में आया है वह अवश्य दुःख रहित हुआ है।

हे स्वामी ! आप सम्पूर्ण विघ्नों का नाश करने वाले हैं। आप अन्तराय कर्म को नाश करने वाले होने से आप विघ्नान्तक हैं। (आपके शुभ गुणों का कीर्तन करने से) आपके गुणों का कीर्तन करने से सब अशुभ कर्म दूर भाग जाते हैं। आपके गुणों को आपकी भक्ति दे देती है। भक्त जनों से तो आपको कुछ राग नहीं है न आपकी निन्दा करने वाले से आपका कुछ वैर ही है। इसमें मुख्य जीव के भाव ही है। जीव के अन्तरंग जैसे भाव होंगे वैसा ही पुण्य और पाप उपार्जन कर लेता है। निज भाव ही सुख व दुःख के कारण हैं। दूसरा कोई भी पदार्थ या अन्य पुरुष देवी देवता भी नहीं।

जो समुद्र है वह तो आकाश के समान निर्मल पानी से भरा हुआ भी अपनी मर्यादा के अन्दर है। सुमेरु पर्वत की ऊंची-ऊंची शिखरें भी जहां की तहां हैं। पृथ्वी जहां तक फैली है वहीं तक है। परन्तु आपका ज्ञान लोकोत्तर है। आपको देखकर क्रोध मोह और कामदेव दूर ही भाग गये वे स्थिर न रह सके। जहां पर आपकी ज्ञान ज्योति का प्रकाश रहे और मूर्छा हो यह कदापि नहीं हो सकता है। मूर्छा और मोह क्षय हो गये तथा जलकर भस्म हो गये। आपके गुण तो लोकोत्तर हैं और समुद्र की अपेक्षा भी गम्भीर हैं।

जितने प्राणी हैं वे सब भयभीत हैं। निर्भय इस संसार में कोई नहीं है। भोगों में रोग भय लगा हुआ है इसलिये भोगों को रोग के डर से नहीं भोगता। यौवन में वृद्धावस्था आने का भय हैं। धन है तो राजा का भय लगा हुआ है अथवा अवनिपाल का भय है। और जीवन में मरण का भय तथा यमराज का भय है। और शरीर में रोग होने व मृत्यु होने रूप भय हैं। इस अवस्था में भय जो किसको नहीं जिनके अन्दर में आपकी वीतराग मुद्रा विराजमान है तथा जो आपकी भक्ति करने में लवलीन है। हे भव्य तू भी भगवान वीतराग की भक्ति कर जिससे तुझे शीघ्र ही मोक्ष सुख की प्राप्ति हो। उस स्थान में भय नहीं है ।

जिस समय भगवान की भक्ति भव्य जीव करता है और भगवान के गुणों को अपने अन्दर उतार लेता है तब वह भक्त संज्ञा रूपी ज्वर की पीड़ा से रहित हो जाता है तथा उस भक्ति के प्रभाव से मोह कर्म का कार्य नष्ट हो जाता है। उसके ही स्वानुभूति हो जाती है तब पर द्रव्य के गुण और पर्यायों को जान लेता है उनमें रत नहीं होता वह तो जानने वाला होता है। भक्त जन भक्ति के प्रभाव से अरहंत पद, चक्रवर्ती पद, देवेन्द्र पद इत्यादि महा पदों को भी पाता है तथा उन पदों को छोड़कर टंकोत्कीर्ण शुद्ध चिदानंद घन रूप मोक्ष सुख को प्राप्त करता है तथा उस सुख को जीव अनंत काल तक भोगता है परन्तु उस सुख से चलायमान नहीं होता है। यह सब पंच परमेष्ठी भक्ति की ही महिमा है।

हे लोकोत्तम जिन ! आपके मस्तक के ऊपर जो तीन छत्र विराजमान हैं वे कह रहे हैं कि आप तीन लोक के नाथ हैं तथा ईश्वर हैं। आपकी प्रभा तीनों लोकों में विद्यमान है इसलिये सब

संसारी जीव आपकी शरण को प्राप्त हो रहे हैं इससे आपका तीनों लोकों में ईश्वरपना दिखाई देता है । जो भामण्डल आपके पीछे विद्यमान है उसकी प्रभा के सामने करोड़ों सूर्यों की प्रभा लज्जित हो जाती है अथवा फीकी पड जाती है। आपके दांई बांई ओर जो ६४ चमर यक्षों के द्वारा ढोरे जा रहे हैं वे सब एक साथ ही ढोरे जाते हैं। वे आपकी कीर्ति का प्रकाश करते हैं। आपका जो सिंहासन है वह आपको तीन लोक का अधिपतित्व अर्थात् स्वामीपना प्रकट करता है । यह सिंहासन यह प्रकट करता है कि यही अरहंत देव ही तीन लोक के जीवों को शरणागत हैं अन्य देवों में यह क्षमता नहीं इसलिए वे सिंहासनाधीशपना को प्राप्त नहीं हो सकते। आपकी महिमा को कौन ज्ञानी कह सकता है। क्योंकि आपके गुण अलौकिक हैं शब्द तो असंख्यात हैं परन्तु गुण अनंत हैं सो असंख्यात शब्दों से अनंत गुण नहीं कहे जा सकते।

जो अपने स्वभाव में हमेशा विराजमान हैं। श्रेष्ठ मुनिराज भी जिसकी अराधना करते हैं। जिसके सेवन करने मात्र से ही अज्ञान रूपी अंधकार नष्ट हो जाता है। यह कैसी है भक्ति जो अज्ञान को जड़ से नष्ट कर देती है। और ज्ञान ज्योति का प्रकाश करती है। यह भक्ति भक्त जनों के रोग, शोक और व्याधियों को नाश करती है। तथा संसार भ्रमण को नाश करती है। यह जिन भक्ति ही अपर अर्थात् दूसरी कामधेनू है। यह कहना भी ठीक नहीं क्योंकि कामधेनू तो एक पशु का नाम है तथा उससे भी याचना करनी होती है। परन्तु जिन भक्ति से याचना नहीं करनी होती है वह तो विना याचना के ही देती है। यह प्रथम में सरल हैं अथवा पुण्यानुबन्धी पुण्य का कारण है। और यह चिन्तामणी से भी अचित्य है क्योंकि चिन्तामणि

एक प्रकार का पत्थर है परन्तु चिन्ता करने पर देती है यह बात भगवान की भक्ति की नहीं। भक्ति तो स्वयं ही विना चिन्तवन के इच्छित फल को देने वाली है। यह मोक्ष रूपी द्वार में लगे हुए अर्गला (वैडा) को खोलने वाली महा सुभट के समान है। जिस प्रकार समर्थ योद्धा युद्ध में अपने से बलवानों को हराकर जय ध्वजा फहराता है। उसी प्रकार यह भक्ति भी मोक्ष के द्वार को खोलने में पोधा के समान है। श्री जिनेन्द्र भगवान की भक्ति श्री मेरी रक्षा करे।

मैं मुनि ज्ञानभूषण जिनेन्द्र भगवान के चरण कमलों की सेवा करता हूँ भक्ति करता हूँ वह मेरी रक्षा करें तथा सब जीवों को कल्याणकारी हों। अज्ञान का नाश करके सुज्ञान रूप जो मुक्ति सुख है उसकी शीघ्र ही प्राप्ति होवे। जो जिनेन्द्र भगवान की भक्ति भाव सहित करते हैं वे जीव भक्ति के प्रभाव से थोड़े ही काल में अविनाशी मोक्ष सुख को पाते हैं।

आचार्य भक्ति

जो भव्य जीव आचार्य रूपी कल्प वृक्ष की सेवा करते हैं वे ही सम्यक्चारित्र को प्राप्त होते हैं जिसको प्राप्त कर अनन्त काल के आत्मा से सम्बन्ध रखने वाले पाप मलों का नाश करने में समर्थ होते हैं। जहां पर स्वसंवेदन ज्ञान प्रकट हुआ है वहां पर मिथ्याज्ञान रूप अंधकार नहीं रहता जिस प्रकार सूर्य के उदय होने पर कमल वन में एकदम खिल जाते हैं। उसी प्रकार भव्य जीव आचार्य को प्राप्त कर अपने को यशस्वी मानते हैं। वे आचार्य छत्तीस गुणों के धारक होते हैं पंचाचार दस धर्म, बारह तप, तीन गुप्ति, छह आवश्यक, इनका निर्दोष रूप से पालन करते हैं तथा साधुओं के अट्ठाईस जो मूल गुण हैं वे पंच महाव्रत, पंचेन्द्रिय निरोध, पांच समिति, छह आवश्यक तथा सात शेष मूल गुणों का भी निरतिचार पालन करते हैं तथा हमेशा ही मन गुप्ति, वचन गुप्ति, काय गुप्ति का पालन करते हैं। उत्तम क्षमा आर्जव, मार्दव, सत्य शौच, संयम, तप, आकिञ्चन्य त्याग और ब्रह्मचर्य इन धर्मों का पालन करते हैं तथा अंतरंग और बाह्य तपों को करते हैं। प्रोषधोपवास, ऊनोदर, रसपरित्याग, व्रतपरिसंख्यान, विविक्तशैयाशन, काय क्लेश इनका पालन करते हैं तथा अंतरंग प्रायश्चित, आलोचना, प्रतिक्रमण, तदुभय, विवेक व्युत्सर्ग, तपश्छेद परिहार उपस्थापन, ये बारह प्रकार के तपों को आचार्य करते हैं। सुसंयम के साथ ध्यान

रूपी अग्नि में कर्म रूप पाप मलों का नाश करते हैं। तथा धैर्यवान होते हैं। वे तेजस्वी होते हैं और कितना ही परिषह व उपसर्ग आने पर वे संयम व सम्यक्त्व से चलायमान नहीं होते हैं। तथा वे आचार्य संसार में चतुरगति के जन्म मरण वृद्धावस्था के दुखों से भय भीत हैं।

वे मनुष्य धन्य हैं वे ही पुण्यवान हैं कि जिनको आचार्य रूप वृक्ष के नीचे शीतल छाया प्राप्त हुई है। जो चार संज्ञा रूपी ताप से तप्तायमान हो रहे थे अब आचार्य के चरणों की शरण को प्राप्त हुए जिससे आहारादि संज्ञा दुःख नहीं दे सकती। वे मनुष्य कषाय रूपी घानी में नहीं पेरे जाते हैं। अथ संसार के जन्म मरण रूप दुःखों से शीघ्र ही छूट जाते हैं। तथा वे ही यथार्थ में संयम को पालन कर अन्त में समाधि मरण कर मोक्ष को प्राप्त होते हैं।

जो ३६ गुणयुक्त सन्मार्ग में चलने वाले तथा पंचाचारों के पालन में दक्ष (चतुर) जो समिति गुप्ति सहित हैं इस प्रकार जिनका धन तप हो है उन आचार्यों के लिये मैं सिर झुकाकर नमस्कार करता हूँ।

जो आचार्यों की भक्ति श्रद्धापूर्वक मन, वचन, काय से करते हैं तथा पंचाचारों का पालन करते हैं व आचार्यों के पाद तले में निवास करते हैं। वे भव्य जीव शुद्ध यथाख्यात चारित्र को प्राप्त करते हैं। तथा वे ही भक्त मोक्ष सुख को प्राप्त होते हैं। तथा वह मोक्ष सुख उपमा रहित है अन्त रहित है तथा बाधा रहित होने से निर्बाध है ऐसे सुख आचार्यों की भक्ति के प्रसाद से ही जीव को प्राप्त होते हैं।

जो व्रत अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह इन पंच महाव्रतों का तथा ईर्या, भाषा, ऐषणा, आदान निक्षेपण, उत्सर्ग इन

पांच समिति तथा मन, वचन, काय इन तीन गुप्तियों के पालन करने में संलग्न हैं अथवा रत हैं। तथा छह आवश्यक क्रियायें जो सामायिक, स्तवन, वंदना, प्रत्याख्यान, ध्यान, स्वाध्याय और कायोत्सर्ग इनका पालन प्रमाद छोड़कर करते हैं। जो उत्तर गुणों में भी दोष नहीं लगाते हैं। तथा जिनका तेज सूर्य और चन्द्रमा से भी अधिक है वे आचार्य हैं।

जो आचार्य साधुओं के अट्ठाईस मूल गुणों का निर्दोष पालन करते हुए लोक व्यवहार के जानने वाले होते हैं तथा देश काल का विचार कर यत्र-तत्र विहार करते हैं। जो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र से श्रेष्ठ हैं वे आचार्य हम सबकी रक्षा करें।

जो भव्यआचार्य महाराज की भक्ति नित्य करते हैं तथा करने वालों को सराहना देते हैं तथा करवाते हैं निरालस होकर अपनी शक्ति के अनुसार भक्ति दृढ़ चित्त हो कर करते हैं वे भव्य जीव सुख को शीघ्र ही प्राप्त होते हैं इसलिये मुनि ज्ञान भूषणजी ने भक्तिवश यह आचार्य भक्ति भावना लिखी है।

●

बहुश्रुत भक्ति भावना

जो सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र में युक्त हैं और धर्मोपदेश देने में जो कुशल हैं तथा मुनियों के २८ मूल गुणों का पालन करते हैं उन उपाध्याय परमेष्ठी की अष्ट द्रव्य लेकर भक्ति करो तथा अर्घ उतार नमस्कार करो।

जो ११ अंग तथा १४ पूर्व का हमेशा पाठ पढ़ते हैं तथा अन्य भव्य जीवों को निर्दोष रूप से पढ़ाते हैं। एवं शिक्षा, दीक्षा भी साधुओं को देते हैं वे उपाध्याय परमेष्ठी हैं, वे बहुगण हैं उनका पाद प्रक्षालन कर मस्तक पर धारण करो तथा अष्ट द्रव्य से महार्घ उतार आरती करो। आहार, औषध, ज्ञान, उपकरण दान व अभय दान देकर प्रसन्न रखो। बहुतमान सम्मान करो यह बहुश्रुत भक्ति है।

अपने शिष्य तथा पर के शिष्यों को अनुग्रह करने में जो कुशल हैं चारित्र रूपी गुणों में महा गम्भीर हैं। ध्यान रूपी अग्नि के द्वारा जो पाप रूप ईंधन को जला रहे हैं। अपने बाह्य योगों से रहित अभ्यन्तर योगों में स्थित हुए हैं वे उपाध्याय भगवान हैं।

उपाध्याय हमारी रक्षा करें। वे मोक्ष रूपी महल की सीढ़ियां रूप हैं और वे आकुलताओं से रहित हैं इसलिये वे निराकुल हैं। वे भव्य जीवों के अज्ञानान्धकार को अपने तेज से नष्ट कर रहे हैं। जिस क्षेत्र में सूर्य विराजमान होता है वहां

क्या अन्धकार रह जाता है ? नहीं रह सकता। आप ज्ञान रूपी सूर्य ही है जो ऐसी सभा के मध्य शोभा प्राप्त करते हैं तथा जो अपने तेज से भव्य जीवों के मिथ्या ज्ञानान्धकार को नष्ट कर सम्यग्ज्ञान का प्रकाश करते हैं एवं व दी जन जैसे उनके सामने दिन में चन्द्रमा फीका होता है वैसे ही फीके पड़ जाते है।

जो संभिन्न श्रुत के पारगामी हैं, जिनकी कोष्ठ बुद्धि है, जिनकी बीज बुद्धि है, जिनकी पादानुसारी तथा जो श्रुत के भण्डार हैं। जो अग और अंगबाह्य का अध्ययन नित्य ही करते हैं तथा चौदह पूर्व का पाठ करते हैं, कराते हैं, वे पाठक हैं।

जो इन उपाध्याय परमेष्ठी बहुश्रुत की सेवा करते हैं तथा उनका ध्यान करते हैं उनकी भक्ति भाव से पूजा करते हैं तथा दान देते हैं, तथा मन वचन काय से वयावृति करते हैं वे भव्य जीव श्रुतसागर के पारगामी बन जाते हैं अथवा श्रुत केवली या केवली होते हैं। इसलिये हे ! भव्यों उन पाठकों की श्रद्धा भक्ति कर अपने जन्म को सार्थक बनाओ ,

जो मनुष्य उन पाठकों की मन, वचन, काय की शुद्धि पूर्वक भक्ति करता है व जिनेन्द्र भगवान के कहे हुए तत्वों को प्राप्त होता है तथा मिथ्यात्व, अज्ञान, मिथ्याचरण का त्याग करता है (नष्ट कर देता है) वही श्रुत रूपी समुद्र का पारगामी होता है। इस प्रकार वह जीव ही नियम से जिनामृत का पान करता है और सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र को प्राप्त होता है यही एक श्रेय: मार्ग है। यही एक मोक्ष का मार्ग है जहां पर कोई प्रकार की आकुलता नहीं है। यह कथा या व्याख्यान नहीं यह तो निश्चय से स्वात्म भक्ति है, यही भक्ति सर्व प्रकार से कल्याण मार्ग है, इसके बिना जीवों को दूसरा कल्याण का रास्ता नहीं है।

प्रवचन भक्ति भावना

जिस जिनवाणी के द्वारा छह द्रव्य, सात तत्व व पंचास्तिकाय तथा नौ पदार्थों का स्वरूप निश्चय व्यवहार नयों के द्वारा कहा गया है। जिसमें मिथ्यात्व मोह क्षय के व अज्ञान क्षय के कारणों का कथन भली प्रकार से किया गया है उस जिनवाणी का अध्ययन अकाल को छोडकर अन्यकाल में निरन्तर करना चाहिये। स्वाध्याय के पांच भेद कहे गये हैं वाँचना, स्वाध्याय पूछना, पढ़ना है उसका पुनः विचार करना व मनन चिंतवन करना यह अनुप्रेक्षा है। धर्मोपदेश देना तथा प्रश्न करना इस प्रकार भेद कहे गये हैं। स्वाध्याय करते समय उच्चासन चौकी आदि पर रखकर विनय से नमस्कार करे तथा मन, वचन, काय की शुद्धता से युक्त होकर नमस्कार करे तथा मंगलाचरण पढ़े और कायोत्सर्ग पूर्वक नमस्कार करके पाठ पढ़ना चालू करना चाहिये।

वांचना का काल प्रातःकाल में तथा मध्याह्न व सायंकाल इनमें छह घटिका काल को छोडकर शेष कालों में होता है। ग्राम में अग्नि लग जाये तो स्वाध्याय बंद कर देना चाहिये। तथा अधिक जोर से वर्षा होने बादल गरजते समय भी स्वाध्याय नहीं करनी चाहिये। उपदेश व धर्म चर्चा करते हुए आगमानुसार थोड़े वचनों में ही शंका का समाधान करना तथा प्रेम पूर्वक वचनों का बोलना, तथा स्व पर के कल्याण

करने वाले वचनों को वोलना। विशुद्ध कहने का अर्थ यह है कि अक्षर हीन व अधिक नहीं कर मात्रा जितनी हों उतनी ही शुद्ध उच्चारण करते हुए पढ़ना चाहिये। सर्वज्ञ के द्वारा कहा हुआ जिन प्रवचन है वह गुणों का हो समुद्र है जो इसका स्वाध्याय करता है उसके पास वहुत गुण स्वभाव से ही आ जाते हैं जिस प्रकार वर्षा होने पर पानी सिमट कर एक तालाव भर जाता है। उसो प्रकार सद्गुण सज्जन के पास आ जाते हैं। यह ज्ञान नित्य हो सूर्य के समान उदय रूप है जो विवेक स्वरूप से स्थित हो रहा है। और पुण्य को जन्म देने वाला है। यह जिनवाणी पुण्यानुवंधी पुण्य का ही कारण है।

यह जिन प्रवचन स्याद् पद से सुशोभित है और हेय उपादेय को वताने वाला है। हित अहित किसमें है इसको प्रकट रूप से वताता है। यह जिन प्रवचन पुण्य और पाप का फल प्रकट कर प्रकाशमान हो रहा है। तत्व अतत्वों का ज्ञान इसमें प्रकट रूप है। शुभ क्या है, अशुभ क्या हैं तथा निक्षेप और प्रमाण स्वरूप को धारण करता है। कृत्य अकृत्यों का लक्षण इसमें प्रकट किया गया है। यह जिनवाणी अनेक नय रूपी लहरों से युक्त है जिस प्रकार समुद्र में समय समय पर लहरें उठती है उसी प्रकार इसमें भी नय रूपी लहरें उठा करती हैं। इसकी घोष समुद्र के अमृत के समान है तथा अविनाशी सुख को प्रदान करती हैं। इसमें एक ही वस्तु का अनेक प्रकार से कथन करने पर भी विरोध उत्पन्न नहीं होता है। यथा घट है, घट नहीं है, घट है, नहीं है। जहां घट है, वहां पर नहीं है, जहां पर है वहां घट नहीं है। जहां कुम्हार जुलाहा दोनों हैं, वहां पर दोनों ही नहीं है और है यह तीसरा भंग हो जाता है। घट अवक्तव्य स्यात्, घट अवक्तव्य स्यात्, घट अवक्तव्य स्यात् घट

अस्ति नास्ति अवक्तव्य इस प्रकार का कथन जिन प्रवचन में ही है, अन्यत्र मिथ्यावादियों के यहाँ नहीं हैं। परस्पर विरोधी वस्तुओं के स्वभाव का युगपत् कथन, जिन प्रवचन में ही अविरोध रूप से दिखाया गया है इसमें नय विवक्षा के अभाव में पदार्थों की यथार्थता नहीं होती है।

यह जिनेन्द्र भगवान का कहा हुआ आगम रागद्वेष रूपी मलों से रहित होने के कारण ही विमल है और वादी प्रतिवादी जिसका खण्डन नहीं कर सकते तथा यह प्रवचन उपमा रहित होने से अनुपम कहा है। यह जिन प्रवचन अमृत के समान है और इन्द्रिय जनित विषय विष के विरेचन कराने के लिए औषध के समान है। जन्म मरण रोग महा रोग बुढ़ापे का नाश करने वाली है तथा निश्चय से अविनाशी मोक्ष सुख को देने वाली है तथा सर्व प्रकार के दुःखों का नाश करती है। जिन प्रवचन एक महा औषधि है। कैसी औषधि है? इन्द्रिय विषयों में जो सुख मानता है उसको दूर करने वाली है। कैसी है? अमृत स्वरूप है। यह संसारी अनादि काल से पचेन्द्रियों के विषयों का अनुभव करके अपने को सुखी व दुःखी मानता है और कर्म करके कर्मों से ही आप बंध जाता है। इस कारण ही जन्म, मरण बुढ़ापा, रूपी रोगों से दुःखी होते हैं। जब जीव को जिन प्रवचन रूपी औषधि मिल जाती है तब पंचेन्द्रियों के विषयों की रुचि हट जाती है यह ही विरेचन हुआ। जब गरिष्ट आहार किया तब कुपच हुआ जिससे आकरादि ज्वर उत्पन्न हो जाते हैं। तब उसके पचाने, दस्त करने व वमन करने की औषधि उपकारी होती है। उसी प्रकार जिन प्रवचन उपकारी है। उन विषयों से विरक्त भाव होने से कर्म बंध नहीं होता है तथा संसार के दुःखों से छुट्टी ही मिल जाती है।

ये जिन प्रवचन दो प्रकार का है। व्यवहार और निश्चय से इसमें मुख्य तथा गोण रूप है। तथा द्रव्य श्रुत और भाव श्रुत के भेद से भी दो प्रकार का है। तथा अंग बाह्य और अंग प्रविष्ट के भेद से भी दो प्रकार का है द्रव्य श्रुत पराश्रित है भाव श्रुत स्वात्माश्रित है। अनात्मभूत और आत्मभूत रूप से श्रुत जिन पवचन दो प्रकार का है। द्रव्य श्रुत, भाव श्रुत का कारण है, भावश्रुत कार्य रूप है भावश्रुत कारण रूप है केवल-ज्ञान कार्य रूप है। केवलज्ञान का कारण भाव श्रुत है, द्रव्यश्रुत है। यह जिन प्रवचन आस्रवों के निरोध का कारण है। जब जीव श्रुतज्ञान को प्राप्त कर लेता है तब उसके विवेक जागृत होता है, विवेक होते ही दुःख और दुखों के कारणों को जानकर उन आस्रवों का निरोध करने को सम्मुख होता है तथा शुभ अशुभ दोनों प्रकार के आस्रवों का निरोध कर संवर को प्राप्त होता है।

श्रुत द्रव्य और भाव के भेद से दो भेद हैं द्रव्य श्रुत के बारह भेद हैं आचारांगादि तथा अंग बाह्य के दश वैकालिक प्रकीर्णकादि तथा चौबीस तीर्थङ्करों की स्तुति व सामायिकादि तथा अवधि मनः पर्याय ज्ञान का जिसमें कथन किया गया है व केवलज्ञान और पर्यायों का जिनमें कथन है। तथा उत्तराध्ययन कल्पा-कल्प का कथन जिसमें है उस जिन प्रवचन की स्तुति करता हूँ।

जो मदमत्त अज्ञानी मिथ्यादृष्टि के द्वारा कहे गये ३६३ मतों का निरसन करती है यह जिन प्रवचन अज्ञानता का नाश करने वाली है, तथा जिन मिथ्यादृष्टि ज्ञानी जीव व्याप्य व्यापक भाव से रहित पदार्थ का ही निर्णय करते हैं यह उनके एकान्त पक्ष का ही प्रभाव है। जहां पर विवक्षा जैसी कही गई है उस प्रकार की व्यवस्था अन्य वक्ताओं में नहीं है। उनके

वचन में अपने में पूर्वा पर में विरोध देखा जाता है । परन्तु जिन प्रवचन में सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र की एकता को ही मोक्षमार्ग कहा है। अथवा श्रेय मार्ग है इसका जो भक्ति सहित पालन करता हे वह मुक्तिश्री के साथ पाणिग्रहण करता हैं अथवा मोक्ष को प्राप्त होता है। चारित्र १३ प्रकार का है पंच महाव्रतों को भाव सहित पालन करना। हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह इनका भावना सहित त्याग करना मन, वचन, काय से त्याग करना तथा उन अहिंसादि पाँच पापों का त्याग मन, वचन, काय, से तथा कृत कारित अनुमोदना से करना। ईर्या, भाषा, ऐषणा, आदान, निक्षेपण उत्सर्ग ये पाँच समितियों को पालन करना तथा गुप्ति, मनगुप्ति, वचनगुप्ति, कायगुप्ति ये तीन गुप्तियों का पालन भाव पूर्वक करने से मोक्ष की प्राप्ति होती है।

जिन प्रवचन के नाम वाणी, भारती, ब्रह्मचारिणी जगत् माता, गौ, वीणा, धारिणी, माता श्रुतदेवी, कुमारीब्राह्मी, पुस्तक धारिणी, वरदा, गोरी, ब्रह्माणी, सरस्वती, शारदा इतने सब एक प्रवचन भक्ति के हो नाम हैं। और यह दिव्य ध्वनि ज्योति स्वरूप हैं।

जो मन, वचन, काय की शुद्धि पूर्वक विनय सहित जिन प्रवचन का पाठ करता है अथवा दूसरे प्राणियों को पढ़ाता है और संपूर्ण आगम वचन सब प्रकार से प्रमाद को छोड़कर अपनी शक्ति और भक्ति सहित होकर जो श्रद्धान रखकर ज्ञान उपार्जन करता है वह विवेकवान सम्यग्दृष्टि है।

इस प्रवचन में जीवों का आगमन और गमन का कथन है। जीव कौन सी गति से कौन सी गति को प्राप्त हुआ है, कौनसी गति से आया है। कौन सा गुणस्थान किस जीव के होता है।

किस गुणस्थान का क्या स्वरूप है जीव समासों का कथन जिसमें है और मार्गणा स्थानों का (कहा गया) स्वरूप कहा गया है। भाव और भावों से कर्मों के आस्रव वंध का कथन यथार्थ जिन प्रवचन में ही कहा गया है। कर्मों का फल भी कहा गया है, जिन संज्ञाओं का भोग जीव करता है तथा संसार में भ्रमण करता है उनका कथन जिन प्रवचन में ही कहा गया है।

जो श्रमण १४ प्रकार का अंतरंग परिग्रह तथा १० प्रकार के वाह्य परिग्रहको तथा चारों संज्ञाओं का त्याग कर संयम संयुक्त हुआ है। सुख दु ख में समभाव को धारण कर लिया है, वह श्रमण जिन प्रवचन का पात्र होता है। जो जिन प्रवचन से पदार्थों का स्वरूप जानकर दुःख सुख में समभाव को रखता है, राग रहित होता है, वह ही श्रेय मार्ग को प्राप्त होता है। वही शुद्धोपयोगी श्रमण होता है।

जितनी द्रव्यें हैं, वे सव द्रव्यें अनन्तगुण और गुण विकार रूप पर्यायों से सहित हैं। उन द्रव्यों में हमेशा ही उत्पाद व्यय और ध्रोव्यपना शाश्वत ही रहता है। तीनों योग युक्त अथवा एक योग, दो योग तथा तीनों योग युक्त जीवों के आस्रव भावास्रव व द्रव्यास्रव दोनों प्रकार का कारण जीव के योग ही है। योगों से ही आस्रव होता है, योग रहित जीवों के कर्मों का आस्रव नहीं है।

वंध के चार भेद हैं। प्रकृति वंध स्थिति वंध अनुभाग वंध और प्रदेश वंध चारों प्रकार के वंध के कारण मिथ्यात्व असंयम योग और कषाय सहित प्रमाद हैं जिनसे जीवों के वंध होता है। मिथ्यात्व के पांच भेद । संशय विपर्यय अज्ञान विनय एकान्तऔर संयम के वारह भेद हैं प्राण संयम, षट्काय संयम इन्द्रिय संयम

के भेद से हैं असंयम के साथ मन वचन काय की प्रवृत्ति को योग कहते हैं। प्रमाद के पन्द्रह भेद हैं, कषाय ४ विकथा ४ इन्द्रिय ५ निद्रा और स्नेह इस प्रकार कषाय के पच्चीस भेद हैं। अनंता-नुबंधी, अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान, संज्वलन क्रोध मान माया लोभ तथा नौ कषायें हैं हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्री नेद पुरुष वेद और नपुंसक वेद। ये सब मिलकर जीव के भाव ही आस्रव बंध के कारण हैं।

जिस जिनवाणी में स्वर्गों, नरकों, तिर्यञ्चों व मनुष्य लोक के भेदों का विस्तार पूर्वक कथन किया गया है तथा जीवों की गति अगति नित्य निगोद, इतर निगोद, सूक्ष्म, वादर पर्याप्त और अपर्याप्त सेनी असेनी इस प्रकार जीवों की भेद व्यवस्था की गई है। इसलिये जिन प्रवचन भक्ति करने से पाप मलों का नाश होता है।

जिस जिन प्रवचन में जीव के दस प्राण, चार संज्ञा, चौदह जीव समास समनस्क अमनस्मक तथा विकलेन्द्रिय संक-लेन्द्रिय भेदों का कथन है, मोक्ष और संसार का कथन प्रकाश-मान किया गया है संवर और निर्जरा का स्वरूप कहा गया है। तथा मोक्ष और मोक्ष के कारणों का कथन जिसमें किया गया है वह है जिन प्रवचन।

आचार्य कहते हैं कि जिन प्रवचन भक्ति निरालश होकर हमेशा करो क्योंकि यह मनुष्य का तीसरा नेत्र है तथा ध्यान का कारण है। ध्यान करने से कर्मों का आस्रव रुक जाता है तथा संवर और कर्मों की निर्जरा सकाम अकाम दोनों प्रकार की होती है। सब कर्मों का सत्ता में से निकल जाना ही मोक्ष है इसलिये सतत जिन प्रवचन भक्ति का अभ्यास करो।

यह जिन प्रवचन माता चार विभागों में बँटी हुई है प्रनमा-

नुयोग करणानुयोग चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग में विभाजित है। प्रथमानुयोग में शलाका पुरुषवान अथवा पुण्य पुरुषों का चारित्र बोधिसमाधि और पुण्य तथा पाप का फल बताया गया है तथा जीवन चारित्र का कथन है।

जिसमें लोक और अलोक का कथन किया गया है. जीवों की जन्म मरण व योनि पर्यायों का कथन किया गया है। तथा जीव अजीव, आस्रव बंध, पुण्य, पाप, संवर, निर्जरा और मोक्ष का स्वरूप केवलज्ञानियों के द्वारा कहा कहा गया है वह करणानुयोग है। तथा चारों गतियों का एक साथ कथन जिसमे किया गया है वह करणानुयोग है।

जिसमें मुनियों का तथा गृहस्थों के संयम चारित्र की वृद्धि तथा रक्षा व उत्पत्ति के कारणों का कथन किया गया है वह चरणानुपयोग है, तथा जिसमें पुण्य पाप और द्रव्यों का तत्व अतत्वों और बंध मोक्ष का स्वरूप कहा गया है तथा पुरुषार्थ का कथन किया गया है वह द्रव्यानुपयोग है।

यह जिन प्रवचन रूप आगम है, वह आगम सन्मार्ग का संशोधन करती है, खोटी बुद्धि कलह आदि का नाश करने वाली है, और बोधि का निधान ज्ञान का भण्डार है। यह जिन प्रवचन भक्ति भव्य जीवों को मोक्ष में पहुँचने वाली है। जिन भव्य जीवों ने भली प्रकार मन, वचन, काय की शुद्धता पूर्वक भक्ति की, उन जीवों ने अविनाशी अनन्त सुख के धाम मोक्ष को प्राप्त किया, कर रहे हैं और भविष्य में भी जियज्ञा का पालन कर मोक्ष सुख को पावेगे।

जो भव्य जीव इस प्रवचन माता की सेवा भक्ति भाव से करते हैं वे ज्ञानभूषण राज्य व निर्वाण सुख साम्राज्य को प्राप्त होते हैं ज्ञानभूषण के राज्य ऐसा अथवा तीर्थङ्कर पद को प्राप्त होते हैं। तथा सिद्ध गति को प्राप्त होते हैं।

षड् आवश्यक पालन

मुनियों की जह आवश्यक क्रियायें कही गई हैं उसी प्रकार गृहस्थों की भी छह आवश्यक क्रियायें कहीं गई हैं। अनगारों की समता स्तव वन्दना प्रतिक्रमण प्रत्याख्यान स्वाध्याय ध्यान कायोत्सर्ग इस प्रकार छह आवश्यक क्रियायें कही गई हैं। जिनको नियम से करना ही होगा उनको आवश्यक कहते हैं।

गृहस्थों की दिनचर्या की विधि है वह छह प्रकार की है उनको गृहस्थों को अवश्य ही पालन करनी चाहिये। जिन पूजा गुरुओं की उपासना (भक्ति) कायोत्सर्ग विनय तप और दान ये षट् आवश्यक क्रियायें कही गई है।

सामायिक का स्वरूप

मैं सब जीवों में समता भाव को धारण करता हूँ मेरा किसी भी प्राणी मात्र से वैर नहीं है। मैं सब जीवों को क्षमा करता हूं और सब जीव मुझे भी क्षमा करें।

सुख-दुख में जीवन-मरण में लाभ-हानि में शत्रु मित्रों में कांच-सुवर्ण व मशान-महल में समता भाव को धारण करता हूं तथा ममता भाव का त्याग करता हूं। क्योंकि यह ममता भाव ही ससार में वैर बढ़ाने वाला है तथा राग उत्पन्न करने वाला है इसलिए मैं ममता का त्याग करता हूं। मैंने प्रमाद से हे भव्य प्राणियो आपको बहुत प्रकार से दुःख दिया होगा धन हरण

होगा तथा शारीरिक पीड़ा दी होगी, और भी अनेक प्रकार से दुःख दिये होंगे, उनकी अब आपसे क्षमा चाहता हूँ। मुझे आप क्षमा करें। आपने जो कुछ जाने विना जाने मेरे प्रति दुष्परिणाम किया होगा वेदना दी होगी उसके लिए मैं क्षमा करता हूं, मेरा और आपका कोई वैर विरोध नहीं है, मैं आपका मित्र हूँ तथा आप सब मेरे मित्र हैं मेरा कोई वैरी नहीं मैं भी किसी का वैरी नहीं।

राग वैर को त्यागकर माध्यस्थ भाव का होना। सब जीवों में समता भाव रखना (सबके साथ समान भाव) सब प्राणियों से मित्रता का भाव रखना। सब जीवों पर दया भाव रखना। विराधना रूप हिंसा नहीं करना तथा पीड़ा नहीं देना। दूसरे गुणवान भव्य जीवों को देखकर अत्यन्त प्रसन्नचित्त होना तथा दूसरे के गुणों को देखकर उनके गुणों को अपने में उतारना तथा अपने अवगुणों को निकालकर फेक देना यह प्रमोद भाव है। जो भव्य जीव इनका सेवन करता है वह ही प्रशंसनीय है तथा सामायिक की प्रसिद्धि है।

मेरे आत्मा में ज्ञान है मेरी आत्मा में दर्शन है मेरी आत्मा में चारित्र है। मेरी आत्मा में प्रत्याख्यान है मेरी आत्मा में संवर है मेरी आत्मा में योग भी है। ये गुण सब मेरे आत्मा में ही व्यवस्थित हैं और अविनाशी हैं।

संसार में जो दिखाई देते थे वे भी विनास को प्राप्त हो गये और अब उनकी स्थिति ही नहीं रही। तब जो मेरे भाई, भतीजे, काका, मामा, पुत्र, पिता, स्त्री आदिक कैसे शाश्वत रह सकते हैं जिस प्रकार आकाश में विजली चमकती है और अपना वैभव वताकर क्षण में ही क्षय हो जाती है उसी प्रकार ये संसार की विभूतियां हैं। मेरी एक आत्मा ही शाश्वत अविनाशी ज्ञान

दर्शन उपयोग मय है। मेरी आत्मा कभी भी नष्ट होने वाली नहीं वह तो सब रूपी अरूपी पदार्थों को जानने वाली तथा देखने वाली शुद्ध बुद्ध स्वरूपी है। हे आत्मन ! तेरा जैसा परिणाम तू करता है वह परिणाम ही तेरे को दुःख का कारण है। तथा जो तुमने पर वस्तुओं के संयोग को सुख वियोग को दुःख व संयोग से दुःख वियोग से सुख जो होता है यह अपनी मान्यता ही दुःख का कारण है। जब तक पर को अपना मानता है तब तक उसके वियोग का दुःख होता है। जब किसी को अनिष्ट मानता है और उसका संयोग हो जाता है, उसमें सुख मानता है। जिस प्रकार सुवर्ण एक धातू है उसका मुकुट बना हुआ था जब घर में पुत्र बधु आ गई उसके लिए करोधनी की आवश्यकता हुई तब उसको तुड़वाकर करोधनी बनवाई गई। जब मुकुट का अभाव हुआ तब श्वसुर को बड़ा दुःख हुआ कि मेरे दादा बाबा के हाथ की निशानी थी वह नष्ट हो गई। उधर वह करधनी बहू के हाथ में पहुँची तो उसको देख बड़ी प्रशन्न हुई। यह एक ही स्थान में इष्ट का वियोग से दुःख इष्ट के संयोग से सुख परन्तु सुवर्णकार उसके बनाने बिगाड़ने में न सुखी न दुःखी हैं समान भाव को धारण करता है इसी प्रकार सब वस्तुयें संयोग वियोग रूप ही हैं। मैं इस संयोग वियोग से ही दुःखी अनादि काल से होता आया। अब मैं इनका त्याग करता हूँ। इस प्रकार सब का त्याग कर देता है तब इष्ट अनिष्ट वियोग संयोग के दुःख से मुक्त हो जाता है। अपने ही स्वभाव में सुख है अन्यत्र सुख नहीं है। ऐसा चिन्तवन करना चाहिये। इसका नाम सामायिक आवश्यक है।

अब भव्यात्मा विचार करता है कि मेरा मरण नहीं है तब किसका शोक और किसका भय। शोक तो इष्ट वियोग के होने

पर और विनाश की आशंका होने पर भय होता है परन्तु मेरा मरण ही नहीं तब वह भय मेरे पास कैसे रह सकता है। और मेरे आत्मा में कोई रोग नहीं है यह रोग तो शरीर में है और पीड़ा फिर मेरे कैसे हो सकती है। फिर मेरे आत्मा रूपी हृदय को कैसे शोक भेदन कर कराता है। मेरे आत्मा बालावस्था तथा यौवन व वृद्धावस्थादि कोई भी नहीं है। ये सब भाव मेरे आत्मा रूपी घर में फिर कैसे हो सकते हैं ये सब थी पुद्गल द्रव्यमय हैं। ये सब पुद्गल द्रव्य में ही व्याप्य व्यापक हैं।

यदि पंच महाव्रतों को समिति गुप्तियों सहित भली प्रकार पालन करता है तथा उनकी मर्यादा को भंग नहीं करता है। उन व्रतों सहित होकर अपने शुद्धात्मा की प्राप्ति के लिए पृथ्वी धारण जल धारण इत्यादि विकल्पों को सम्मुख करके अपने शुद्धात्मा का ध्यान करता है। जब ध्यानाग्नि धधकने लग जाती है उसमें कर्म रूपी ईंधन को जला देता है तब चार प्रकार के बंध से आत्मा छूट जाती है। और शुद्धचिद् रुप होता हुआ संसार के अन्त में जाकर निवास करने लग जाता है।

विशेष—जब मुनिराज तेरह प्रकार के चारित्र को निर्दोष रूप से पालन करते हुए जब ध्यान रूपी अग्नि को जलाकर कर्म रूपी ईंधन को होम कर देते हैं। जब कर्म रूपी ईंधन पूर्ण रूप से जल जाता है तब आत्मा का भार दूर हुआ। जिस प्रकार कबाड़े का ढोने वाला बोझ को वहन करता है और नाना प्रकार से दुःखी होता है उसी प्रकार जीव भी द्रव्य कर्म तथा नो कर्म रूपी कबाड़े को ढोता है जिसको लिए चारों गतियों में भ्रमण करता है। जब अंतरंग और बाह्य परिग्रहों का त्याग कर राग रहित होकर संयम और तप का आचरण करता है तब सब कर्मों की कामर को उतारकर फैंकता है तब शान्त

रूप सुख को प्राप्त हुआ लोक के अन्त में विराजमान हुआ वहां पर अनन्तानन्त काल पर्यन्त सुखों का अनुभव करेगा।

चौविसों तीर्थकरों का जो स्त्रोन पढ़ा जाता है उसको स्तत्र कहते हैं, तीर्थकरों में से कोई एक तीर्थकर व योगियों की स्तुति करना यह वन्दना है पूर्व में उपार्जन किये हुए दोषों को दूर करने के लिए जो दैवशिक रात्रिक पाक्षिक चातुर्मासिक वार्षिक भेद से प्रतिक्रमण पांच भेद वाला है। भविष्य में इन दोषों को कभी नहीं करूंगा इस प्रकार त्याग करना यह प्रत्याख्यान है। जिन दोषों का प्रतिक्रमण किया गया है उन दोषों को नहीं लगने देना ऐसी प्रतिज्ञा करना यह प्रत्याख्यान है।

जब दस प्रकार का बाह्य एवं चौदह प्रकार का अतरंग परिग्रह, आहार, भय, मैथुन परिग्रह इन चार संज्ञाओं का तथा भोजन और शरीर से ममत्व का त्यागकर जो अपने ऊपर परीषह व उपसर्ग के आने पर जो अपने आत्मा में ही देखता है। उसका ही ध्यान करता है वही ध्यान प्रशंसा के योग्य है। इस प्रकार साधुओं की षट् आवश्यक क्रियायें कही हैं। ध्यान स्वाध्या और कायोत्सर्ग सामायिक में आता है परन्तु यहां विशेषकर स्वाध्याय का नियम कहा है।

जो भक्त भव्य जीव अपने घर से दूध, दही, घृत, चन्दन, पुष्प, अक्षत, नैवेद्य, फल, दीप, धूप आदि इनको अपने हाथ में लेकर मन्दिर में जाकर भगवान के चैत्यालय की प्रथम सफाई करता है। फिर स्नान आदि क्रियाओं से निवृत्त होकर पुनः भगवान का जल, चन्दन, दूध, दही, घृत से अभिषेक करता है। तथा पूजन करते समय क्लेश भाव से रहित तथा आकुलता रहित होकर पूजा करता है चतुर्विंशति तीर्थकरों की तथा सिद्ध, आचार्य

तथा सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु, जिनवाणी इत्यादि की पूजा भक्ति भाव से करता है। जो प्रतिदिन जिन पूजा करता है वह तीनों लोकों के इन्द्रों के द्वारा पूजा को प्राप्त होता है। अपने उपार्जित दुष्कर्मों के शान्ति के लिये वांछा रहित होकर शुद्ध विधि पूर्वक पूजा करता है वह भव्य ही श्रेष्ठ गिना जाता है।

जो गुरुओं की उपासना करता है गुरुओं की सेवा वैयावृत्ति करता है तथा आहार औषध ज्ञान, दान और अभय दान देता है एवं गुरुओं के पाद प्रक्षालन कर अपने मस्तक पर भक्ति से धारण करता है तथा विनय पूर्वक हाथ जोड़ नमस्कार करता है वह सम्यग्दृष्टि श्रावक ही श्रेष्ठ है। अष्ट द्रव्य लेकर पूजा करता है वह बुद्धिमान भव्य प्राणी संसार के उत्तम से उत्तम सुखों के प्राप्त होते हैं और शिघ्र ही अविनाशी फल मोक्ष सुख को भी प्राप्त होते हैं।

संयम के दो भेद हैं काय संयम एवं इन्द्रिय संयम। एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय जीवों की रक्षा करना, दया भाव करना यह संयम है परन्तु यहां पर तो सिर्फ संकल्पी हिंसा का त्याग स्थूल रूप है असत्य का त्याग, चोरी का त्याग, स्व स्त्री को रख कर शेष स्त्रियों का त्याग। परिग्रह परिमाण इस प्रकार के भेद हैं।

दिगव्रत देशव्रत अनर्थदण्डव्रत इसके पांच भेद हैं त्रियक्लेश वाणिज्य हिंसादान अपध्यान दुःश्रुति और प्रमाद चर्या। सामायिक प्रोषधोपवास भोगोपवास प्रमाण अतिथि संविभाग ये चार शिक्षाव्रत हैं। संकल्प नहीं करना संकल्प ही हिंसा है। मारने व बिगाडने का संकल्प करना कि मैं अमुक को कल मारूंगा यह संकल्प है। इस संकल्प में ही हिंसा है। वह हिंसा जीवों के भाव प्राण व द्रव्य प्राणों का विनाश करने पर ही निर्धारित है। पंचेन्द्रिय संयम छटा मन संयम तथा दस प्राणों की विराधना नहीं करना। पंच स्थावर तथा एक त्रस ये सब षट्कायक

जीव हैं इनको आगम प्रमाण से जानकर विराधना नहीं करना यह संयम है।

(संयम) जब अच्छी तरह से द्रव्य प्राण और भाव प्राण का परिचय हो गया तब ज्ञानी सम्यग्दृष्टि जीव उनकी विराधना रूप हिंसा नहीं करता। प्राणियों को अभयदान हमेशा देते रहना चाहिये। यह संयम ही धर्म है संयम धर्म ही जीवों का परम उपकारी है यही आगम में कहा है विशेष आगम से जानलेना चाहिए।

स्वाध्याय करने से जो मिथ्यावादियों के द्वारा प्ररूपण किये गये ३६३ मत हैं, उन मतों का तथा अज्ञान रूपी अंधकार को यह सुन्दर ज्ञान स्वाध्याय नष्ट करता है तथा जो अकल्याण रूप हैं १८० क्रियावादियों, अक्रियावादियों के ८४, अज्ञानवादियों के ६८ वैनायिकों के ३२ भेद हैं उन सब मतों का निरशन करता है। वह सम्यग्ज्ञान, चारित्र रूप जो मोक्षमार्ग है उसका प्रकाश करता है। सम्यग्ज्ञान पूर्वक चारित्र को देखकर मोक्ष रूपी लक्ष्मी वरमाला उस भव्य के गले में शीघ्र ही पहिना देती है। इसलिए जिनवाणी का स्वाध्याय नित्य प्रति करना योग्य है। स्वाध्याय परम तप है अतः आगम में स्वाध्याय को परम (उत्कृष्ट) तप कहा है।

तप के भेदों को तप विनय के स्थान में कह आये हैं बाह्य और अभ्यन्तर के भेद से तप १२ प्रकार का है। बाह्य तप प्रोषधोपवासादि छह प्रकार के हैं तथा अन्तरंग भी छह प्रकार के हैं। इन्द्रिय जनित लालसाओं का त्याग करना तथा कषायों की क्षीणता करना ही तप है तथा इच्छाओं को रोकना ही तप है।

दान चार प्रकार का है वस्तिका, उपकरण, शास्त्रदान आहारदान, औषधदान, अभयदान इस प्रकार चारों दानों को यथाशक्ति करना गृहस्थों का धर्म है। दाता (दानी) सप्त गुण सहित होता हुआ, नवधा भक्ति पूर्वक पांच शून्य रहित होकर

उत्तम, मध्यम, जघन्य पात्र को दान देता है। भक्ति भाव सहित विनय शील होकर दान देकर अपने जन्म को धन्य मानता है। यह सम्यग्दृष्टि श्रावक मरण के पश्चात् स्वर्ग में उत्पन्न होता है। यदि दाता मिथ्यादृष्टि भी हो तो भोग भूमि के सुखों को तो अवश्य ही प्राप्त करता है। उत्तम पात्र निर्ग्रन्थ मुनिराज हैं। मध्यम पात्र ऐलक क्षुल्लक हैं। जघन्य पात्र देशव्रती संयमी प्राणी हैं, पात्र सम्यग्दृष्टि श्रावक है, अपात्र मिथ्यादृष्टि है, कुपात्र मिथ्यादृष्टि हिंसक जीव हैं। इनको क्रम से दान देने से स्वर्ग में जीव जाता है तथा क्रम से मोक्ष पद को प्राप्त करता है। इस विधान में अपात्र व कुपात्र को पात्र समझ कर दान नहीं देना चाहिये क्योंकि अपात्र व कुपात्र के लिये दिया गया दान हानि का ही कारण बन जाता है। अपात्र कुपात्र को दिया गया दान दुर्गति का कारण है। इसलिये सत्पात्र को ही दान देना चाहिये।

पूजा व दान मुख्य हैं ये दो छह कर्मों में श्रेष्ठ कहे गये हैं जो श्रावक होकर भी भगवान की पूजा नहीं करता है न मुनिराजों को आहार दान ही देता है वह श्रावक बिना धर्म के शोभा को नहीं प्राप्त होता है जो मुनि होकर ध्यान अध्ययन नहीं करता है वह यति भी शोभा को नही पाता है, क्योंकि अध्ययन के बिना वह मुनिचर्या को नहीं जान सकेगा तथा अपनी क्रिया के बिना निन्दा का पात्र बनेगा।

जिस मुनि और श्रावक को मोक्ष की अभिलाषा है उनको चाहिये कि वे अपनी-अपनी छह आवश्यक क्रियाओं को प्रमाद छोड़-कर करें। ये षट् आवश्यक क्रियायें प्रतिदिन करनी चाहिये।

मार्ग प्रभावना दान सप्त क्षेत्रों के लिये दान देना तथा धर्मात्मा त्यागियों का मान सम्मान करके तप के वैभव को दिखाना कि जैन तपस्वी पक्षोपवास मासोपवास करते हैं। अन्य प्रकार से तप की प्रशंसा करना गाजे बाजे से नगर में पालकी में बिठाकर

निकालना तथा प्रभावना बांटना। जिनेन्द्र भगवान की पूजा करना, नन्दीश्वर पूजा, सिद्धचक्र पूजा करना, जलयात्रा निकालना, ज्ञान के वैभव को बताकर अज्ञान रूपी अन्धकार को यथा क्रम से दूर करना और जैन धर्म की प्रभावना करना। रथ यात्रा करके धर्म की प्रभावना करना। उत्सव करके अनेक प्रकार से जैन धर्म वैभव को प्रकाश में लाना। जिन्होंने व्रत उपवास किये उनको मान देकर उनका जनसमूह के मध्य में सम्मान करके अपने आत्म वैभव के द्वारा यह प्रकट कर दिखा देना कि आत्मा में कितनी शक्ति है। मन्दिर निर्माण करके उसकी प्रतिष्ठा करके जुलूस निकालना। तथा ज्योनार देना, भगवान के पंचकल्याणों की पूजा द्वारा जिन धर्म की प्रभावना करना जिसको देखकर मिथ्या धर्मावलम्बी जनों के हृदय में जैन धर्म का प्रकाश हो यह प्रभावना करना वात्सल्य अंग हैं।

वात्सल्य भावना परस्पर में प्रेम को दृढ़करती है और राग-द्वेष का विनाश करती है। जिस प्रकार गाय और बच्चे का प्रेम होता हैं, गाय बच्चे से प्रेम कर प्रति उकार की भावना से नहीं करती। यदि गाय के सम्मुख सिंह भी आ जाये तो भी वह बच्चे के प्रति प्रेम होने से बच्चे को छाती से लगाकर सिंह का मुकावला करती है। उसी प्रकार साधर्मी बन्धुओं तथा विद्वानों और धर्मात्मामनुष्यों के प्रतिद्वेष नहीं करना चाहिये तथा धर्मात्मा जीवों की प्रशंसा आदर और विनय करना चाहिए और अपने भाई बन्धुओं व संयमी प्राणियों को देख हर्षितहोना चाहिये। जो धर्म के धारण करने वाले श्रावक, श्राविका, आर्यिका, मुनिराजों के प्रति वात्सल्य भाव धारण करता है व उनके गुणों का ग्राहक होता है तथा अपने अवगुणों का त्याग करता है, दीन दुःखी जीवों पर करुणा भाव धरता है यही वात्सल्य अंग है।

साधर्मी जनों के साथ वात्सल्य भाव करना चाहिए। गुणवानों की प्रशंसा करना ही गुणों की प्रशंसा है। परन्तु यहां पर शास्त्र के और जिनावणी के प्रति वात्सल्य कहा है। जिनवाणी

उन्नत करने का प्रयत्न करना, अज्ञानता के विकारों को दूर करके यथाकाल में यथोयोग्य प्राणी को धर्मोपदेश देना व पाठ पढ़ाना, पढ़ना प्रश्न व्याकरण आदि का अत्यधिक विनय करना, व पढ़ाने वाले का विनय करना। जिनवाणी की यदि कोई विराधना करता हो तो उससे कोई भी प्रकार से बचाने में प्रवृत होना तथा साधर्मी भाइयों के साथ कल्ह या उपद्रव न करना। यदि साधर्मी भाई के ऊपर कोई प्रकार का उपसर्ग आ जावे जिसमे उस धर्मी भाई के धर्म मे चलायमन होने की संभावना हो तो उस संकट में, पर की तरफ दृष्टि न करते हुए उसके कष्ट दूर करना। जहां तक बने तहां तक तन से मन से धन से व आत्मबल से दूर करना, उसको धैर्य बंधाना, संतोष करना यह वात्सल्य अंग है। जिस भी प्रकार से धर्मात्मा और धर्म का वृद्धि हो उस प्रकार कार्य करना चाहिए। आत्मधर्म की वृद्धि होती है और आपस में प्रेम बढ़ता है। जिसमे परोपकार की इच्छा प्रधान है यह वात्सल्य अंग जगत पूज्य है। जिसमें किये गये उपकार के प्रति प्रत्युपकार की वांछा नहीं होती है उसके ही प्रवचन वात्सल्य भावना होती है। यह प्रवचन वात्सल्य भावना वैर विरोध को दूर कर परस्पर में स्नेह उत्पन्न करती है। मिथ्यादृष्टि भी वात्सल्य भाव को देखकर अपने दुष्ट कठोर भावों का त्याग कर सरल परिणामी हो जाता है तथा वह सद्धर्म से द्वेष को छोड़कर सधर्म में लवलीन हो जाता है। बलि प्रहलाद आदि चार विप्र मन्त्रियों ने ७०० मुनियों पर जब घोर उपसर्ग किया था तब पांच दिन बीत चुके मुनिराज शरीर का राग त्याग कर समाधि में स्थित हो गये। उस समय विष्णुकुमार मुनिराज ने अपने आत्म बल से प्राप्त ऋद्धि के द्वारा बावन का रूप धारण किया, और बलि व प्रहलाद आदि महापशु यज्ञ कर रहे थे, वहां पहुंचकर वेद व गायत्री मंत्रों की ध्वनिगाई और वीणा बजायी तथा शंख ध्वनि की यह देख यज्ञ में आये हुए ब्राह्मण चकित हो गये। विचार करने लगे कि ऐसे तो विष्णु भगवान

को हमने कभी नहीं देखा, न ऐसा रूप देखा, न ऐसी ध्वनि ही सुनी न ऐसे वेदों का उच्चारण ही सुना, न ऐसे गायत्री मंत्रों को ही सुना। वे बामन महाराज तो दानशाला में पहुंच गये, वहाँ पर उन्होंने कुछ भी नहीं माँगा सिर्फ तीन पग भूमि माँगी। बलि ने विधि पूर्वक देना स्वीकार किया और तीन बार जलधारा छुवाई गई। विष्णुकुमार मुनि बोले कि अब देर नहीं करना है, शीघ्र ही दान लेना है। इस प्रकार विचार करके कहा कि मेरे लिए कहाँ पृथ्वी है सो बता दीजिये? यह सुनकर बलि कहने लगा जहां आपके योग्य अच्छी लगे वहाँ ले लीजिये। यह सुनते ही मह राज ने विक्रिया करके भूमि और समुद्र को एक ही डग में नाप लिया अब शेष भूमि न रही तब मुनिराज बोले कि दो डग तो हो गई अब तीसरी डग कहाँ भरूं? यह सुनकर बलि ने कहा कि मेरी पीठ पर रख लीजिए। यह सुनकर बलि की पीठ पर ज्यों ही पैर रक्खा त्यों ही चिल्लाने लगा हाय मरा-हाय मरा। इधर देव विद्याधर आदि आकाश से पुष्पों की वर्षा करने लगे और प्रार्थना की, कि इस अज्ञानी को क्षमा करो, क्षमा करो क्षमा करो। यह श्रवण कर उन्होंने कहा कि जा अभी सब साधुओं को बंधन से मुक्त कर और यज्ञ में पानी डाल। यह सुनकर बलि प्रहलाद आदि सब ही शीघ्र दौड़े और यज्ञ को बन्द कर दिया तथा मुनिराजों का उपसर्ग दूर हुआ अब बलि प्रहलाद आदि सबको प्रतीति उत्पन्न हो गई और वे मिथ्या मार्ग को छोड़कर मोक्ष मार्ग में रत हुए। इस प्रकार प्रवचन वात्सल्य भावना जानना।

यह वात्सल्य भावना माया, मिथ्या और निदान इन तीनों शल्यों का नाश करती है तथा क्रोध, मान, मोह, माया और लोभ इन चारों कषायों का नाश करती है। इन कहे हुए आठों के द्वारा ही जीव संसार में भ्रमण करता हुआ दुःखों को प्राप्त होता

अर्थात् ये आठो ही दुख देने वाले जीव के लिये हैं। जीवका हमेशा ही अहित करते हैं। तथा संसार में ही जीव की स्थिति रखते हैं। सम्यग्ज्ञान और चारित्र रुप गुणों का समूह ऐसा आत्मा प्रसन्नता को प्राप्त होता है। प्रवचन वात्सल्य भावना के होने से जीव निश्चय ही मोक्ष को प्राप्त होता है क्योंकि यह सम्यक्त्व का सातवां अंग भी है। जब वात्सल्य अंग होगा तभी सम्यक्त्व की सिद्धि होगी तथा सम्यक्त्व के अभाव में मोक्ष नहीं। इस तरह प्रवचन वात्सल्य भावना कही।

ये कही गई षोडश भावनायें वे यदि सम्यक्त्व के साथ हैं। तो तीर्थङ्कर नाम कर्म का शीघ्र ही कारण बन जाती हैं। सम्यक्त्व सहित जीव थोड़ा काल पाकर मोक्ष सुख को प्राप्त होता है। सम्यक्त्व के होने पर जीव सम्यग्ज्ञान व सच्चारित्र का धारी होता। तथा चारित्र संपन्न जीव ही शीघ्र मोक्ष सुख को प्राप्त होता है। यदि विनयादिक पंचदश भावनायें यथाकाल में पाई जावें तो भी एक दर्शन विशुद्धि के बिना मोक्ष का कारण नहीं। सब भावनाओं मे दर्शन विशुद्धि भावना ही प्रधान है।

सुभः ज्ञानभूषण ने भक्तिवश सोलह कारण भावनायें कही हैं। इन भावनाओं को जो भव्य भाव सहित पढ़ते हैं तथा पुनः पुनः चिन्तवन करते हैं वे भव्य तीर्थङ्कर नाम कर्म को प्राप्त होते हैं।

मुभः ज्ञानभूषण के द्वारा सोलह कारण भावनायें संक्षेप से कही गई हैं उनकी शुद्धि श्रुत के धारक विद्वान भली प्रकार संशोधन करके पढे क्योंकि मैं तो अल्पज्ञानी हूं और हंसी का ही पात्र हूँ। व्याकरण अलंकार और आगम का भी परिज्ञान नहीं है परन्तु अंतरंग सोलह कारण भावनाओं की भावना से ही रची है।